॥ राधास्वामी दयाल की दया, राधास्वामी सहाय ॥

राधास्वामी गाय कर जन्म सुफल कर ले।
यही नाम निज नाम है मन अपने धर ले॥

प्रेमपत्र राधास्वामी

पहला भाग

जिसको कि

परम संत सतगुरु हुज़ूर महाराज ने
ज़बान-ए-मुबारक से फ़र्माया

राधास्वामी ट्रस्ट
स्वामी बाग़, आगरा-२८२ ००५

प्रकाशक :

राधास्वामी ट्रस्ट

स्वामीबाग़, आगरा-२८२ ००५

पहली बार	सन्	१८९३	ईसवी	१०००	प्रतियाँ
दूसरी बार	सन्	१९१६	ईसवी	१०००	प्रतियाँ
तीसरी बार	सन्	१९३६	ईसवी	१०००	प्रतियाँ
चौथी बार	सन्	१९५२	ईसवी	१०००	प्रतियाँ
पाँचवीं बार	सन्	१९६२	ईसवी	१०००	प्रतियाँ
छटी बार	सन्	१९७३	ईसवी	१०००	प्रतियाँ
सातवीं बार	सन्	१९८०	ईसवी	१०००	प्रतियाँ
आठवीं बार	सन्	१९८५	ईसवी	१०००	प्रतियाँ
नवीं बार	सन्	१९९१	ईसवी	१०००	प्रतियाँ
दसवीं बार	सन्	१९९२	ईसवी	२०००	प्रतियाँ

सर्वाधिकार प्रकाशक द्वारा सुरक्षित

दसवीं बार २००० प्रतियाँ] सन् १९९२ ई० [मूल्य : अजिल्द २०.०० / सजिल्द २[illegible].५०

30/50

मुद्रक
राष्ट्रीय आर्ट प्रिंटर्स
मोतीलाल नेहरू रोड
आगरा-३

प्रेमपत्र पहला भाग जो कि पहली मई १८९३ ई० से ३० अप्रेल सन् १८९४ ई० तक समाप्त हुआ। उसके बचनों का

सूची-पत्र

नम्बर बचन	सुरखी यानी खुलासा मज़मून बचन	नम्बर पृष्ठ
१	शरण की महिमा	९
२	भक्ति-मार्ग की महिमा	१३
३	परमार्थ में जो-जो विघ्न-कर्ता हैं, उनका हाल	१७
४	परमार्थ की कमाई में खास तीन विघ्नों का हाल	२०
५	अभ्यास में विघ्न और उनके दूर करने का यत्न	२७
६	उपदेश सतगुरु और संतभक्ति का	३५
७	चितावनी	३६
८	भेद मत का	४१
९	उपदेश शब्द के अभ्यास का	४९
१०	सतसंगियों की रहनी का वर्णन	५७
११	संत सतगुरु की महिमा और सुरत-शब्द अभ्यास की बड़ाई	६३
१२	भेद नाम का	६९
१३	सतसंग की महिमा	७५
१४	भक्ति की महिमा	८३
१५	सच्ची शरण और सच्ची करनी के लिए किन बातों का पहले निर्णय करना चाहिए	८८
१६	वर्णन दर्जों का जो संतों ने रचना में मुक़र्रर किये हैं और बड़ाई संत मत की	९७
१७	मालिक के चरणों में भय, भाव और अदब	१०४
१८	जो लोग कि सिवाय संत मत के अभ्यास के, और और काम परमार्थी कर रहे हैं, उनको क्या फ़ायदा होगा ...	१०९

१९ संत अथवा राधास्वामी मत में जो जो अभ्यास कि जारी हैं उनकी कार्रवाई अन्तर में ऊँचे घाट पर होती है, और बाहर सिवाय सतसंग और सेवा और आरती के, कोई कार्रवाई नहीं होती १३२
२० नेत्र के स्थान से सुरत को अन्तर में चढ़ाना, यही सच्चा मार्ग उद्धार का है १४५
२१ सब जीवों को, अभ्यास सुरत-शब्द का, वास्ते कल्याण और उद्धार अपने जीव के, करना चाहिए १५३
२२ पुरुषार्थ और प्रारब्ध यानी मौज अथवा तदबीर और तक़दीर १५९
२३ परमार्थ में गुरु की ज़रूरत, और उनकी क़िस्में और दर्ज और भेद १६५
२४ परमार्थी कार्रवाई और अभ्यास का उतार और चढ़ाव, पिछले वक़्तों से अब तक १८८
२५ अभ्यास में तरक़्क़ी की परख और पहिचान, और वर्णन उन संयमों का जिनसे अभ्यास दुरुस्त बने १९९
२६ परमार्थ की ज़रूरत हर एक जीव को, और संतों के उपदेश का सच्चा और पूरा फायदा २०७
२७ ज़वाब थोड़े से सवालों के, जो एक सतसंगी ने भेजे ... २१४
२८ रचना का वर्णन कि आदि में कैसे हुई २२२
२९ राधास्वामी मत क्या है ? और उसके अभ्यास, सुरत-शब्द मार्ग का फल क्या है ? २२९
३० सुरत को भी अहार और रस देना चाहिए, जैसे कि तन, मन और इन्द्रियों को दिया जाता है २३४
३१ सुरत-शब्द मार्ग के अभ्यास से मन और इन्द्रियों का क़ाबू में आना २३८
३२ मन का प्रबल (ज़बर) झुकाव संसार की तरफ़, और उसकी तरंगों को रोकने की युक्ति २४२

३३ सच्चे और पूरे गुरु की पहिचान जल्दी नहीं हो सकती। इस वास्ते पहिले उनके साथ साध का बर्ताव करे और सत-संग और अभ्यास करे जावे, तब कोई दिन में कुछ-कुछ परख आती जावेगी २५०
३४ जीवों पर सच्चे मालिक की दया का हाल, और वर्णन उनकी ग़फ़लत और बे-परवाही का, उसकी तरफ़ से, और मुनासिब और लाज़िम होना हर एक जीव पर उस दया की परख करके, उससे संत सतगुरु के बचन के मुवाफ़िक़ कमाई करके, अपने सच्चे उद्धार का फ़ायदा हासिल करना २५७
३५ वर्णन हाल सच्चे परमार्थी जीवों का, और दर्जे उनकी प्रीति और और प्रतीत के, सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल और सच्चे गुरू के चरणों में, और यह कि कैसे यह प्रीति और प्रतीत दिन-दिन बढ़ती जावे २७२
३६ धर्म और कर्म का बयान २८८
३७ मन और इच्छा का बयान २९२
३८ मन की भूल, भ्रम और ग़फ़लत और बे-परवाही ३०१
३९ मन और इन्द्रियों की चाल और उनकी सम्हाल ३११
४० स्वार्थ और परमार्थ, यानी दुनिया और दीन के कामों का बयान ३१६
४१ मन और सुरत का खिलना और ख़ुश होना और कभी भिचना और दुखी होना अभ्यास की हालत में ३२१
४२ करनी और शरण का वर्णन ३३९
४३ अभ्यास के ख़ास विघ्नों का वर्णन और उनके दूर करने और अभ्यास की तरक़्क़ी की युक्ति ३४४
४४ राधास्वामी मत की सहज युक्ति का सहज अभ्यास ... ३५७
४५ सवालात एक सतसंगी की तरफ़ से, और उनके जवाबात ... ३६४
४६ जो सवाल कि सफ़ा २८० पर लिखे हैं उनके जवाब खुलासा तौर पर ३६६

४७ सवाल-जवाब ३७७
४८ सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल से जान-पहिचान और मुहब्बत करना ३८२
४९ सच्ची और पक्की प्रतीत और पहिचान सच्चे मालिक राधास्वामी दयाल की ३८७
अर्थ शब्द सार बचन छंद बंद--गुरु अचरज खेल दिखाया ... ३९९
५० राधास्वामी अथवा संत मत की निंदा का सबब और निंदकों का हाल ४०१
अर्थ शब्द सार बचन छंद बंद--अंत हुआ जग माहिं ... ४३०
अर्थ शब्द सार बचन छंद बंद--गुरु उल्टी बात बताई ... ४३३
अर्थ शब्द सार बचन छंद बंद--सुनरी सखी इक मर्म जनाऊँ ... ४३६
५१ राधास्वामी मत का अभ्यास और उसका फल ... ४३८
५२ राधास्वामी मत के अभ्यासियों को, दुनियादारों और दूसरे मतों के लोगों से, और खास कर वाचक ज्ञानियों और सूफ़ियों से, किस तरह बर्ताव करना चाहिए ... ४४५

राधास्वामी मौज से प्रेम पत्र जारी।
दृढ़ विश्वास होय चरण में और प्रीति गाढ़ी ॥
सुमिरन ध्यान और भजन में नित नया आनंद पाय।
सतसंगी सब उमंग उमंग राधास्वामी महिमा गाय ॥

राधास्वामी दयाल की दया, राधास्वामी सहाय

प्रेमपत्र राधास्वामी

पहला भाग

बचन

शरण की महिमा

१—राधास्वामी दयाल को कुल मालिक और सर्व-समर्थ और कुल दयाल और सर्व-प्रेरक समझ कर, उनके चरणों की शरण इस तौर पर लेवे कि जो काम करे उसका फल मौज पर रक्खे। जैसी मौज हो, उसमें राज़ी हो, और जिस क़दर बन सके, भजन, सुमिरन, और ध्यान और पोथी का पाठ और सेवा और सतसंग करता रहे, और भरोसा दृढ़ करके दया का रक्खे। इतने में कुल जीवों का, जो इस तौर पर बर्ताव करे, गुज़ारा मुमकिन है। जो करतूत करे, अगर उसका फल मौज पर छोड़ दे, तो बंधन नहीं होगा, कर्म करता हुआ निःकर्म हो जावेगा। और अंतर में अभ्यास करके जब ऐसी शरण दृढ़ करी है तो दया का आसरा लेकर जो कुछ पिछले और संचित कर्म हैं, आहिस्ता-आहिस्ता कट जावेंगे और मौज के आसरे पर जो कर्म करेगा तो क्रियावान कर्म नहीं लगेंगे और प्रारब्ध कर्मों का भी ज़ोर बहुत कम हो जावेगा। इस तरह पर, सहज गुज़ारा और उद्धार मुमकिन है। इस रीति से तीनों क़िस्मों के

कर्म अपने जीते-जी कटते हुए देख सकता है। और राधास्वामी दयाल के चरणों का निशाना बाँध कर, और इरादा ऐसा पक्का करके, कि वहीं पहुंच कर ठहरूं और कहीं न ठहरूं, अभ्यास करे और दिन-दिन चरणों में प्रीति-प्रतीत बढ़ावे और संसार की तरफ़ से चित्त को (ज़रूरत के मुआफ़िक़ तवज्जह रख कर) हटाता जावे, तो एक या दो जन्म में धुर मक़ाम पर पहुंचना मुमकिन है, और जो कुछ कसर रही तो तीन जन्मों में। मगर जो जन्म इसको, इसके बाद मिलेगा, वह हाल के जन्म से बेतहर होगा, यानी कमाई ज़्यादा बनेगी और दुनिया का आराम भी ज़्यादा मिलेगा, और सतगुरु से ज़रूर मिलेगा। और उनका सतसंग एक-दो रोज़ करने में ही इस जन्म की कमाई खुल जावेगी। और जितने दिन कि चोला छोड़ने और देह धरने में गुज़रेंगे, तब तक ऊंचे स्थान पर रहेगा और सतगुरु के दर्शन और बचन मिलेंगे। और फिर दूसरे जन्म में भी दर्शन सतगुरु के मिलेंगे और सतसंग भी मिलेगा और जिस क़दर कि कमाई पहले जन्म में कर चुका है, उसके आगे से कमाई करना शुरू करेगा। इस तरह पर जन्म धरने में किसी तरह का हर्ज और नुक़सान नहीं है बल्कि कि ख़ुशी की बात है कि काम पूरा होवे और धुर मक़ाम पर बासा पावे। यह शरण जिसका ज़िक्र ऊपर हुआ, दर्जा अव्वल की शरण है। हर एक शख़्स को चाहिए कि इसके मुआफ़िक़ शरण लेवे और अभ्यास करे। जिस दर्जे की शरण होगी, उसी क़दर फ़ायदा, जीते-जी और अन्त समय पर, मालूम होगा। शरण

में दर्जे बहुत हैं, मगर अपनी परख कि किस दर्जे की शरण हासिल है, हर जीव आप कर सकता है। यानी जिस क़दर मौज पर राज़ी हो और जिस क़दर दया का भरोसा करके अभ्यास में लगे, उसको मालूम करके परख हो सकती है। पूरी शरण वाले का एक ही जन्म में काम बनेगा और बाक़ी जिस क़दर शरण कम होगी उसी क़दर देर होगी ॥

२—जैसे कि सुरत हर एक देह में बैठ कर कुल देह की कार्रवाई अपनी धारों की ताक़त से करती है, और कुल देह में प्रेरक वही है, इसी तरह से राधास्वामी दयाल कुल सुरतों के ताक़त देने वाले और प्रेरक हैं और हर एक के घट में अंग-संग मौजूद हैं। इस से उनका सर्व-समर्थ होना साबित है। फिर इस तरह प्रतीत करने में कोई दिक़्क़त मालूम नहीं होती है। लेकिन मन का क़ायदा है कि यह अपनी चतुराई और तदबीर से बाज़ नहीं आता, और पूरा-पूरा भरोसा राधास्वामी दयाल की दया का नहीं करता। वजह इसकी यह है कि जिस काम में या जिस चीज़ में इसका बंधन विशेष है, उस काम के करने में पूरा पूरा भरोसा दया का न लाकर अपना यत्न और तदबीर ज़रूर करता है। और जो इसकी मर्ज़ी के मुआफ़िक़ काम न होवे तो रूखा-फ़ीका या दुखी होकर ऐसा ख़्याल करता है कि अगर फ़लां तदबीर करता तो काम दुरुस्त होता, या फ़लाँ बात के मेरे करने में कसर रह गई, और मौज को भूल जाता है और उसके साथ मुआफ़िक़त नहीं करता।

३—जो ऐसे मन हैं, वे पूरे तौर पर शरण का भरोसा

नहीं रखते। वे चाहते हैं कि राधास्वामी दयाल उनकी ख़्वाहिश के मुआफ़िक़ हर एक काम को पूरा करे। और जो ऐसा नहीं होता तो मौज का आसरा छोड़ कर अपनी तदबीर में, जहाँ तक बनता है, कोशिश करते हैं। ऐसी शरण कसर वाली है। मगर जो इरादा पूरी शरण लेने का सच्चा और पक्का है और मेहनत और अभ्यास करता रहेगा तो एक दिन पूरी शरण हासिल हो जायेगी। ऐसी शरण दृढ़ करने के वास्ते किसी क़दर वैराग संसार के पदार्थ और भोगों से ज़रूर है। ज़रूरत के मुवाफ़िक़ चाह उठानी चाहिए और फ़िज़ूल और बे-ज़रूरत चाह, जिस क़दर हो सके, रोकनी और हटानी चाहिए। और मालूम होवे कि यत्न करना मना नहीं है, पर मौज के आसरे रहना चाहिए ॥

४—हाल के कर्मों के फल की प्राप्ति में पिछले कर्मों का भी असर संग रहता है। जो पिछले कर्म दुरुस्त हैं तो हाल की करतूत दुरुस्त पड़ेगी, नहीं तो उसके फल के मिलने में कमी और बेशी ज़रूर होगी। हरचन्द कि राधास्वामी दयाल हर वक़्त मददगार हैं, लेकिन हर काम जीव की मर्ज़ी के मुआफ़िक़ नहीं हो सकता और जो पिछले कर्म नाक़िस यानी दुखदाई हैं तो उनका फल भी ज़रूर थोड़ा या बहुत भोगना पड़ेगा। इसमें घबराना नहीं चाहिए। जब तक कि संसार की आशा है, तब तक कर्मों का असर रहा आवेगा। जब संसार से निराश हो जावेगा तो कर्मों का बंधन नहीं रहेगा ॥

सवाल १—जो सिर्फ परमार्थ की चाह रखता है और

संसार की कोई आस नहीं है, तो उसको भी पिछले कर्मों का भोग भोगना होगा या क्या ?

जवाब १—जिसने कि सच्ची और पूरी शरण ली है और संसार से सच्चा निराश हो गया है, उसको जो कुछ आराम या तक़लीफ़ आवे, वह राधास्वामी दयाल की मौज से होगी, और उसमें उसका परमार्थी फ़ायदा यानी सफ़ाई मन और सूरत की, और चढ़ाई ऊँचे देश की तरफ़ मंज़ूर होगी ॥

सवाल २—जब कोई शरण में आ गया तो क्या फिर भी काल के साथ डोरा लगी रहेगी ?

जवाब २—जिस ने सच्ची और पूरी शरण ली है, तो डोरी काल के साथ नहीं रहेगी। मगर क़र्ज़ा जो पिछले कर्मों का है, जरूर दिलवाया जावेगा, लेकिन मुलायमियत के साथ, यानी मन भर का सेर भर। और ऐसा जीव आइन्दा को यानी हाल के जन्म में काल से व्यवहार नहीं बढ़ावेगा ॥ और काल के साथ व्यवहार से मतलब है कि संसार के भोगों की आसा मन में रख कर उनकी प्राप्ति के लिए यत्न करना और मौज का आसरा छोड़ देना ॥

बचन दूसरा

भक्ति-मार्ग की महिमा

१—संतों ने भक्ति-मार्ग की महिमा विशेष की है और यह कहा है कि भक्ति-मार्ग, दयाल मत और गुरु मत है, और जिस मत में प्रेम और भक्ति नहीं है, वह मन-मत है। कोई २

मत ऐसे भी हैं कि जहाँ कुछ भक्ति और प्रेम है, मगर वे मूर्तों और जड़ निशानों में भूले हुए हैं, और सच्चे मालिक का पता और खोज बिल्कुल नहीं है। संतों ने सिर्फ़ उस भक्ति की महिमा की है कि जो सच्चे मालिक के चरणों में होवे और अन्तर में अभ्यास करके भगवन्त से मिलने का इरादा होवे। ऐसी भक्ति सतगुरु द्वारा हासिल होगी क्योंकि कुल मालिक का भेद देने वाले सन्त सतगुरु ही हैं॥

२—और जानना चाहिये कि कुल्ल मालिक राधास्वामी प्रेम स्वरूप हैं और सत्तपुरुष भी प्रेम स्वरूप हैं और आत्मा, परमात्मा और ब्रह्म और पारब्रह्म भी प्रेम रूप और सतगुरु भी प्रेम स्वरूप और जीव भी प्रेम स्वरूप है। बग़ैर प्रेम के, सच्चे मालिक से मिलना नहीं हो सकता। आपस में इतना फ़र्क़ है कि राधास्वामी दयाल कुल्ल मालिक प्रेम का सोत और पोत है यानी ख़जाना और भंडार, और सत्तपुरुष प्रेम का सिंध है। और ब्रह्म और पारब्रह्म, प्रेम की लहर है, और जीव, प्रेम की बूँद है। जीव के साथ इच्छा लगी हुई है और ब्रह्म के साथ माया लगी हुई है। सिंध यानी सत्तनाम पद में माया बहुत कम है, मगर सिन्ध के साथ सिन्ध-रूप हो रही है। पर सोत-पोत में, यानी राधास्वामी पद में, माया का नाम और निशान बिल्कुल नहीं है। जो कोई सच्चा उद्धार और सच्ची मुक्ति चाहे, उसको प्रेम-अंग लेकर, सच्चे मालिक का पता लगाना चाहिये। और सच्चे मालिक का पता सतगुरु यानी भेदी गुरू से मिलकर मालूम होगा। और जब सतगुरु मिल जावें और सच्चे मालिक का पता और भेद मालूम हो जावे, तो उसको चाहिए कि सुरत-शब्द

योग का अभ्यास करके अन्तर में चढ़ाई करे, यानी सुरत को शब्द में लगावे, जिस की धुन की धार सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल के देश से आती है और घट २ में मौजूद है। उसी धार पर सवार होकर, सिन्ध में और सोत में पहुँचे, और जब वहाँ पहुँच जावे, तो उसी का नाम सच्ची मुक्ति और सच्चा उद्धार है ॥

३—मालूम हो कि जो शब्द की धार है, वही नूर और जान की धार हैं और वही प्रेम की धार है, और सुरत उसी धार के साथ उतर कर पिंड के नाके पर बैठी हुई है। इसी मक़ाम से उसको अव्वल समेट कर और फिर चढ़ाई कर के, निज घर में पहुँचना होगा, और यही संतों का मत है। ऐसे उद्धार के हासिल करने के वास्ते या तो ऐसे सतगुरु का मिलना ज़रूर है जो धुर मक़ाम तक पहुँचे हुए हों, या ऐसे साध का, जो सतगुरु से मिलकर, धुर मक़ाम के पहुँचने की साधना कर रहे हों। इन दोनों में से जो भी मिले, उस से युक्ति दरियाफ़्त कर के, और उसके ब-मूजिब अभ्यास कर के, घर पहुँचना मुमकिन है। और प्रीति के साथ उनका बाहर से सतसंग करना चाहिए ॥

४—संतों के घर का भेद किसी और मत में नहीं है। और न सिवाय सतगुरु के, या जिस को वे बतावें, दूसरा उस से वाक़िफ़ है। और जितने मत दुनिया में हैं, उन सब का सिद्धांत संतों के देश से बहुत नीचे है, यानी ब्रह्म और पारब्रह्म पद के आगे नहीं गया। ये दोनों स्थान और बाक़ी नीचे के मक़ामात मिस्ल सहसदल कँवल और छठा

चक्र वग़ैरा, माया के घेर में हैं। और जो कोई अभ्यास करके इन मक़ामों तक पहुँच कर ठहर गये, या ठहर जावेंगे, वे माया की हद के पार नहीं जावेंगे, और इस वास्ते जन्म-मरण से भी नहीं छूटेंगे, क्योंकि माया के ग़िलाफ़, बारीक या स्थूल, सुरत पर चढ़े हुए हैं और वही ग़िलाफ़ सुरत की देह हो रहे हैं। इन ग़िलाफ़ों से छुटकारा, बग़ैर माया के देश के पार जाने के, किसी सूरत में मुमकिन नहीं है। ये ग़िलाफ़ हमेशा बदलते रहते हैं। इसी बदलने का नाम जन्म-मरण है। जितने मत कि दुनिया में जारी हैं, और जिनका सिद्धांत कि माया की हद में है, ये सब मन के मत कहलाते हैं, क्योंकि यह देश मन और माया का है, ब्रह्मांडी मन और ब्रह्मांडी माया का या पिंड़ी मन या पिंडी माया का। जिस मत में भक्ति सच्चे मालिक की नहीं है, वह छिलके के मुआफ़िक़ है यानी बीज से ख़ाली है। उसमें सच्चा उद्धार किसी सूरत में हासिल नहीं होगा। इस वास्ते संत मत में सतगुरु और शब्द की भक्ति पर ज़्यादा ज़ोर दिया गया है। और जो कि धुर मक़ाम तक पहुँचे हैं, उनका ही नाम सतगुरु है और शब्द उनका निज रूप है, गोया शब्द ने ही देह धरी है। इस वास्ते यहां भक्ति सच्ची है। जब ऐसी भक्ति अंतर और बाहर करके सुरत, सत्त देश में पहुँचेगी, तब कारज इसका पूरा होगा। बाहरमुख भक्ति या और किसी मक़ाम तक की अन्तरमुख भक्ति, जो माया के घेर में है, करने से, सच्चा उद्धार और सच्ची मुक्ति हासिल नहीं होगी। इस वास्ते इस क़िस्म की भक्ति को संतों ने पसन्द नहीं किया है॥

५—और मालूम होवे कि सिवाय शब्द के अभ्यास के, अन्तर में, ब्रह्मांड की हद्द के परे चढ़ाई मुमकिन नहीं है। जिस मत में निशाना संतों के देश का नहीं है और न चढ़ाई है, तो जो शब्द का अभ्यास भी करते होवें तो भी उससे सच्ची मुक्ति और सच्चा उद्धार हासिल नहीं होगा। जो कोई पातंजलि योग-शास्त्र के ब-मूजिब दस प्रकार के शब्द अन्तर में सुनते हैं और उन में मन एकाग्र होकर रस पाता है, पर जो चढ़ाई का भेद और जुगत नहीं है, यानी न तो पता मालूम है कि कौन शब्द की आवाज़ किस मक़ाम से आती है, और न किसी तरह उस मकाम तक रास्ता तै करना चाहते हैं, तो भी सच्चा और पूरा उद्धार नहीं हो सकता है, यानी इस तरह शब्द के अभ्यास से जीव का देश यानी मक़ाम और हाल नहीं बदलेगा। खुलासा यह कि माया के देश से, जहाँ जन्म और मरण जारी है, न्यारा न होगा। इस वास्ते जो जीव अपना सच्चा उद्धार चाहते हैं, उनको मुनासिब है कि सतगुरु का खोज करके उन की शरन लेवें और सुरत-शब्द योग का भेद और जुक्ति दरयाफ़्त करके अभ्यास शुरू करें और सतसंग करके सतगुरु से प्रीति चढ़ावें और निज स्वरूप राधास्वामी दयाल के चरणों में प्रीति और प्रतीत बढ़ाते जावें। तब आहिस्ता २ एक दिन सुरत, कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल के चरणों में पहुँच जावेगी और पूरा काम बन जावेगा।

बचन तीसरा

परमार्थ में जो जो विघ्नकर्ता हैं, उनका हाल

१—परमार्थ के हासिल होने में सबसे ज़्यादा विघ्नकर्ता

संसार के भोगों की चाह है और मन में मान और ईर्षा का होना। भोगों की चाह ब-निस्बत भोग करने के ज़्यादा विकार करती है। इससे परमार्थी को मुनासिब है कि फ़िज़ूल चाह भोगों की न उठावे, नहीं तो वह भजन में रस नहीं पावेगा, क्योंकि भजन के वक़्त उसका मन भोगों की गुनावनें उठावेगा, और जो मान और अहंकार की जगह दीनता चित्त में लावे तो प्रेम हृदय में दिन-दिन बढ़ता जावेगा। मालिक और सतगुरु के चरणों में तो थोड़ी-बहुत दीनता कर भी लेवे, मगर जीवों के साथ दीनता से बरतना मुश्किल है। जिसके मन में सच्ची चाह परमार्थ की है और सतगुरु और शब्द के रूबरू सच्चा दीन-अधीन है, तो उसको आम तौर पर सच्ची दीनता आती जावेगी। और परमार्थ में शामिल होकर मन में ईर्षा को तो बिलकुल रखना नहीं चाहिए। अगर परमार्थ की चोंप उसके हृदय में पैदा होवे, तो वह फ़ायदेमन्द होगी यानी जो सच्चे परमार्थी को देखकर यह इरादा करे कि हम भी ऐसी सेवा और प्रेम और परमार्थ की कमाई करें, यह मुफ़ीद है। मगर एक की तारीफ़ सुन कर जलना और बैर-विरोध करना और उसकी तारीफ़ को काटना, परमार्थ में सख़्त विघ्न डालता है।

२—परमार्थी को चाहिए कि हमेशा अपने वक़्त की सम्हाल रक्खे, और उसको बे-फ़ायदा यानी, फ़िज़ूल कामों में ख़र्च न करे। अपने उद्यम यानी नौकरी वग़ैरा में उतना ही वक़्त ख़र्च करे जिस क़दर कि उसमें ज़रूरी है, और अपने घर, बार और देह के कामों में मुनासिब वक़्त लगावे, और बाकी वक़्त भजन, सुमिरन, ध्यान, पोथी का पाठ, मनन-विचार और परमार्थ

की बात चीत में ख़र्च करे, इसमें तरक़्क़ी उसके परमार्थ की होती जावेगी।

३—संसारी लोगों से, जिनके दिल में संसारी वासनाऐं बहुत भरी हुई हैं, मेल कम रखे क्योंकि वे इधर-उधर की बातें और पिछले हाल सुना कर दुनिया और उसके भोगों की याद पैदा करायेंगे और उसके चित्त को दुखी कर देंगे और ऐसी तरंगें और हालतें और बासनाऐं परमार्थी के अभ्यास में विघ्न यानी ख़लल डालेंगी। जो कोई सतसंग में आकर संसारी बातें सुनाते हैं, निहायत ही अभागी है। क्या उनको घर में फ़ुरसत इस काम के लिये काफ़ी नहीं मिलती है? और उनसे ज़्यादा अभागी वे लोग हैं, जो उनकी बातें चित्त देकर सुनते हैं और अपने वक़्त की क़दर नहीं जानते॥

४—जो कोई किसी की बुराई बे-मतलब तुम्हारे सामने करता है तो ख़्याल करना चाहिये कि वह तुम्हारी भी बुराई दूसरे के आगे करेगा। यह आदत परमार्थ में बड़ा विघ्न डालती है और ऐसा शख़्स मुफ़्त में अपने को पापी बनाता है।

५—अपने मन की हालत को हमेशा और हर एक जगह पर देखना और परखना चाहिये, और परमार्थ में ख़ास कर इसकी होशियारी रखनी चाहिये कि मन में अहंकार न आने पावे, नहीं तो प्रेम उस हृदय में कभी नहीं ठहरेगा॥

६—जहाँ तक मुमकिन होवे हर एक परमार्थ के चाहने वाले को, जिस क़दर हो सके, मदद देवे। जो मदद न कर सके तो उसका किसी तरह परमार्थी नुक़सान करने का इरादा न करे। इन बातों का ख़्याल हर एक परमार्थी को दिल में रखना चाहिए, तब उसके परमार्थ की तरक़्क़ी होगी और

मालिक उससे खुश होकर प्रेम की बख़्शिश करेगा। और कबीर साहब ने कहा है :—

दोहा

लेने को सत नाम है, देने को अन दान।
तरने को है दीनता, डूबन को अभिमान॥

बचन चौथा

परमार्थ की कमाई में ख़ास तीन विघ्नों का हाल

१—सन्तों के परमार्थ में शामिल होने और उसकी कमाई करने में तीन विघ्न भारी हैं। पहला, संशय, दूसरा, भ्रम, तीसरा, पिछली टेक और रस्मों में बंधन। (१) संशय– जो कोई सतसंग के बचन चेत करके सुने, और जैसा कि संतों ने निर्णय किया है, उसको ग़ौर के साथ विचार करे और समझे, तो उसको कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल का निश्चय आसानी से हो सकता है, क्योंकि ज़मीनी और आसमानी क़ुदरत और रचना को देख कर, इरादा और कारीगरी और मतलब बनाने वाले का साफ़ ज़ाहिर होता है। अपनी देह का हाल जो कोई ग़ौर से नज़र करे तो साफ़ मालूम होता है कि जितने अंग बनाये गये हैं, सब में यह तीनों बातें पाई जाती हैं। यानी हर एक अंग वास्ते एक एक काम के बनाया गया है, और उसकी बनावट में जैसी-कुछ कारीगरी अमल में आई है, साफ़ नज़र आती है, और मतलब यह कि सब अंग से मिलकर इस देह की हर तरह की कार्रवाई दुरुस्त बन आवे। इसी तरह से हर एक स्वरूप यानी देह ज़मीनी और आसमानी का हाल समझ

में आ सकता है। और हर एक देह में क़ुव्वत और ताक़त हर एक रूह की जो उस जिस्म में बिठाई गई है, साफ़ नज़र आती है कि उसकी मदद से कुल्ल कार्रवाई अंग २ की, जो बतौर औज़ार या कल के बनाये गये हैं, जारी है। और यह रूह संतों के बचन के मुवाफ़िक़ एक किरण है उस सूरज की, जो कुल्ल रचना का भण्डार है, और उसी की ताक़त से हर एक रूह ताक़त रखती है। फिर ऐसा भंडार, जहाँ से कि सब रूहें आई हैं, कुल्ल का मालिक हूआ और उसी कुल्ल मालिक का नाम राधास्वामी दयाल है। यह हाल बतौर मुख़्तसिर बयान किया गया है। रचना में बहुत दर्जे हैं बतौर ग़िलाफ़ या तहों के, और ये ग़िलाफ़ या तह बाहर रचना में एक-एक भारी मंडल है और हर एक मंडल में सिवाय बहुत सी रचना के एक-एक बड़ी रूह, मालिक उस मंडल की है, जिसकी ताक़त से कुल्ल कार्रवाई उस मंडल की जारी है। और नीचे के मंडलों में जो इसी तरह पर रूह हर एक मंडल की मालिक क़रार दी गई है, ऊपर की रूह से मदद पाती है। बाद ख़त्म होने इन दर्जों के, जो सब से ऊँचा और अख़ीर दर्जा है, वह राधास्वामी देश कहलाता है। वहीं से आदि में सुरत की धार उतरी और नीचे मंडल बाँध कर रचना करती चली आई। इस बयान से कुल्ल मालिक और सर्व समर्थ होना राधास्वामी दयाल का, साबित है। जब यह बात अच्छी तरह समझ में आ जावे तो फिर किसी तरह का शक और शुबाह उनके कुल्ल मालिक और सर्व समर्थ होने में बाक़ी नहीं रहेगा ॥

२—भ्रम उसको कहते हैं कि जो पद या पदार्थ कि असली नहीं हैं, उनको असली समझ कर उनमें मन और चित्त का लगाना। जबकि राधास्वामी दयाल के कुल्ल मालिक और सर्व सर्मथ होने में कोई शक बाक़ी नहीं रहा, तब नीचे के मंडलों के जो मालिक हैं, उनको कुल्ल मालिक समझना भ्रम में दाख़िल है। नीचे के मंडलों के जो मालिक हैं, वे सब हद्वाले हैं और उन सब के ठहराव की तादाद-ए-वक़्त मुक़र्रर है। फिर जो कोई उनको कुल्ल मालिक गरदान कर उनका इष्ट धारण करेगा, तो वक़्त प्रलय उनके और उनके लोक के, उसका भी सिमटाव हो जावेगा, और जब फिर रचना वहाँ होगी, तब वह शख़्स भी फिर पैदा होगा।

३—इस वास्ते हर एक सच्चे परमार्थी को मुनासिब और ज़रूर है कि कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल का खोज लगा कर, मुख्य तवज्जह अपनी उनके चरणों में लगावे, और उसी देश में पहुँचने का सच्चा और पक्का इरादा करके जिस क़दर बन सके, जतन रास्ता काटने का, करता रहे, तो राधास्वामी दयाल की दया से एक, दो या तीन जन्म में, मुताबिक़ उसकी लगन और प्रेम के, उस मक़ाम में पहुँच कर अजर और अमर हो जावेगा और महा आनन्द और सुख को प्राप्त होगा। और जिस को तवज्जह दुनिया और दुनिया के पदार्थों में रही, वह मुवाफ़िक़ अपने कर्मों के, नीचे के लोकों में और नीचे के दर्जों की योनियों में भटकता रहेगा और देह के संग जो दुख-सुख लाज़िमी हैं, वे और जन्म-मरण का दुख हमेशा सहता रहेगा॥

४—इसी तरह दुनिया के अितने पदार्थ हैं, उनमें निहायत दर्जे का मन का बंधन होना भ्रम में दाख़िल है, क्योंकि वे सब पदार्थ नाशमान हैं और उनके वसीले से एक ही वक़्त और थोड़ी सी कार्रवाई जो देह में इन्द्रियों से ताल्लुक़ रखती है, हो सकती है। पर, पूरी कार्रवाई और हर वक़्त मदद उनसे नहीं मिल सकती है। इस वास्ते मुनासिब है कि सिर्फ़ ज़रूरत के मुवाफ़िक़ ही उन से ताल्लुक़ रक्खा जावे और उनमें इससे ज़्यादा बंधन मन को होना कुल्ल मालिक के चरणों में प्रीति करने में ख़लल डालेगा, और नतीजा उसका यह होगा कि ऐसा शख़्स हमेशा दुखी-सुखी होता रहेगा और जन्म-मरण से रिहाई उस की नहीं होगी। इसी तरह पर हाल कुटुम्ब और परिवार और कुल्ल सामान दुनिया का समझ लेना चाहिये, यानी इन सब में अपना मन सिर्फ़ इस क़दर लगाना चाहिये कि जिसमें ज़रूरी कार्रवाई देह की, जब तक यह क़ायम रहे, जारी रहे और इस क़दर बंधन न होवे कि जो हालत वियोग में किसी शख़्स या सामान के सदमा सख़्त पहुंचे या उसकी ज़िन्दगी को ख़राब कर दे और सच्चे मालिक की तरफ़ से तवज्जह हटा दे ॥

५—पिछली टेक और रस्मों में बन्धन हर एक शख़्स का, जिस देश में और जिस क़ौम और जिस मत में कि वह पैदा हुआ है, और अक़्ल और समझ के हासिल होने के वक़्त तक जैसा जिसको संग मिला है, और जैसा व्यवहार कि उसने अपने कुटुम्बियों और पड़ोसियों और शहर वालों का देखा है, उसी के मुवाफ़िक़ उस की समझ और ख़्याल और चाह और रहनी होवेगी। हर एक मुल्क और हर एक फ़िरक़े में

किसी न किसी का इष्ट मुआफ़िक़ मालिक के, और कोई न कोई चाल और रस्में जारी हैं। और ब-सबब आदत के, हर एक शख़्स को वही पुरानी और बरताव की हुई रस्में और वही इष्ट और वही चाल और वही ख़्याल और उसी क़िस्म का व्यवहार और वैसी ही चाहें पसन्द आती हैं। सिवाय दुरुस्त करने इष्ट सच्चे मालिक के, संत मत किसी की चाल-ढाल में दख़ल नहीं देता है। मगर बाज़ी रस्में और व्यवहार और समझ और चाहें ऐसी हैं, कि जब तक आदमी उनको ग़ौर से विचार कर और संतों के बचन का समझ लेकर हेच और पोच यानी छोटा और ओछा (जैसे कि वे असल में हैं) समझ कर, और उनकी कार्रवाई को फ़िज़ूल और अपने अभ्यास में थोड़ा-बहुत ख़लल डालने वाला समझ कर, उनकी क़दर और आदत सच्चे दिल से कम या दूर न करेगा, तब तक वे उस के यक़ीन और अभ्यास की कार्रवाई में ज़रूर ख़लल डालेंगे। और इष्ट को तो फ़ौरन बदलना चाहिये, यानी और सब का, जो कि सिर्फ़ कामदार क़ुदरत के हैं और राधास्वामी देश से नीचे के मंडलों में तैनात यानी मुक़र्रर हैं, इष्ट और यक़ीन हटा कर, सच्चे मालिक राधास्वामी दयाल का पूरा २ यक़ीन दिल में लाना चाहिये, तब राधास्वामी मत का अभ्यास बन पड़ेगा। और जो पुराने व्यवहार और चाल और रस्म बग़ैरा हैं, उनको जो बिल्कुल न छोड़ सके तो जब तक मुनासिब होवे, ज़ाहिरी तौर पर अपने कुटुम्ब और बिरादरी के साथ उनका बरताव करता रहे। मगर ऐसे बरताव के वक़्त अपने दिल में ध्यान सच्चे मालिक राधास्वामी दयाल

का करता रहे, ताकि जो नुक़सान कि उन रस्मों के ज़ाहिरा तौर पर बरतने से होना मुमकिन है, दूर हो जावे, और उसकी भक्ति और संत-बचन के मुवाफ़िक़ कार्रवाई में ख़लल न पड़े। असल में जितनी रस्में और व्यवहार कि जहाँ-तहाँ देशों में जारी हैं, वे छोटे २ फ़िरक़ों या गिरोहों के, उनकी समझ और विचार और तजरुबे के मुवाफ़िक़ वास्ते आराम ख़ास लोगों या आम लोगों के बनाये हुए हैं। ज़माने का हाल और आब-ओ-हवा भी थोड़ी और बहुत बदलती रहती है और आदमियों की कार्रवाई और ताक़त और समझ और ख़्याल भी बदलते रहते हैं। इस सबब से, जो क़ायदे और रस्म कि एक वक़्त में मुनासिब और ज़रूर समझ गये, वे किसी अरसे के बाद क़ाबिल-ए-तरमीम हो जाते हैं यानी उनमें मुवाफ़िक़ चाल ज़माना और तबियत और समझ लोगों के, कमी और बेशी और दुरुस्ती की ज़रूरत साफ़ मालूम होती है। मगर मन जो आदत का, निहायत दर्जे का बँधुआ है, वह इस क़िस्म की तरमीम को अपनी ओछी अक़्ल और ख़्याल और समझ के सबब से पसन्द नहीं करता। इस वजह से चाहे उन रस्मों और व्यवहार के सबब से दुखी भी होवे, मगर उनके छोड़ने में लोगों की जान सी जाती है। और ज़ाहिर है कि हमेशा हर एक मुल्क में समझ-बूझ वाले लोग बहुत कम और नादान बहुत ज़्यादा होते हैं। इस सबब से नादानों का बंधन पुरानी चाल और रस्मों में ज़्यादा रहता है और वे अपनी ओछी समझ और पकड़ के मुवाफ़िक़ किसी रस्म को, चाहे वह कैसा ही दुख दाई क्यों न हो, बदलना पसन्द नहीं करते, और ऐसा

ख़ौफ़ करते हैं कि बुज़ुर्गों की और पुराने वक़्त की चलाई हुई रस्मों के छोड़ने में शायद उनका या उनके कुटुम्ब-परिवार का या धन की आमदनी का, किसी तरह का नुक़सान न हो जावे और यह ख़ौफ़ उनको ख़ास कर ग़रज़-मन्दों ने दिलाया है, यानी जो-जो रस्में कि पुरानी चली आती हैं, उनमें किसी न किसी क़िस्म के लोगों का कुछ फ़ायदा और आमदनी है। वे नहीं चाहते कि जिन लोगों को वे इस तौर पर धोका देकर अपना रोज़गार बनाते हैं, असल हाल मालूम पड़े या उनकी अक़्ल की आँख खुले और वे अपने नफ़े और नुक़सान को आप विचार कर चाल-चलन मुनासिब तौर पर इख़्तियार करें। यह ख़ास और बड़ी वजह पुरानी चालों के जारी रहने की है। सतसंगी को चाहिये कि जब संतों के बचन सुन कर, किसी क़दर उसकी अन्तर की आँख खुले और दुनिया और दुनियादारों का जैसा कुछ कि हाल है, असली नज़र आवे, तो अपना नफ़ा और नुक़सान, हाल और आइन्दा का, विचार कर, वह चाल इख़्तियार करे कि जिस से उसका सच्चा फ़ायदा यहाँ का और आइन्दा का हासिल होवे। अगर ज़ाहिर में उस की ताक़त किसी चाल-ढाल के बदलने में पेश न जावे तो अन्तर में ज़रूर ही कार्रवाई संतों के बचन के मुवाफ़िक़ करे, नहीं तो उसके परमार्थ में ख़लल पड़ेगा। मगर जिन रस्मों के जारी रखने में, मिस्ल खान-पान, गोश्त और शराब और दूसरे नशे की चीज़ों के, कि जिस में इसका भारी नुक़सान मालूम पड़े, तो उन को फ़ौरन ही छोड़ दे, और ऐसी रस्म के छोड़ने

में किसी तरह का हर्ज़ उसकी ज़िन्दगी का मुमकिन नहीं है, और न कुटुम्ब और बिरादरी के छोड़ने की ज़रूरत होगी। और जो वह ग़ौर से अपनी बिरादरी के हाल और चाल को नज़र करेगा, तो मालूम हो जावेगा कि वे किस क़दर भले और बुरे काम कर रहे हैं और अपने मत और बुज़ुर्गों की चाल के ख़िलाफ़ दुनिया के फ़ायदे और मज़ों के लिये कैसी २ ना-दुरुस्त और बेजा कार्रवाई कर रहे हैं। फिर जो इसने अपने परमार्थ की तरक़्क़ी और फ़ायदे के लिए जो कोई ओछी या ख़राब रस्म पुरानी छोड़ दी, तो उसमें क्या हर्ज बिरादरी और कुटुम्ब वालों का होगा ?

६—इस बयान से यह मतलब नहीं है कि कोई शख़्स अपने कुटुम्ब या बिरादरी से किसी काम में फ़िज़ूल तकरार और झगड़ा करके उनको छोड़ दे, बल्कि संतों के सतसंगी को मुनासिब है कि जहाँ तक मुमकिन होवे, उन लोगों के साथ अपना मेल जारी रक्खे। इसमें उनका फ़ायदा बहुत है और इस का किसी तरह का हर्ज या नुक़सान नहीं है क्योंकि जो मेल रहा आया तो उम्मीद है कि उन लोगों की भी आहिस्ता-आहिस्ता इसके बचन सुन कर किसी क़दर समझ बढ़ती जावेगी, और एक दिन वे भी संतों के बचन की बड़ाई और क़दर जान कर उसके ब-मूजिब कार्रवाई करने लगेंगे ॥

बचन पाँचवाँ

अभ्यास में विघ्न और उनके दूर करने का जतन

१—कोई लोग भजन में रस न मिलने की शिकायत करते हैं, या यह कि अन्तर में उनको कूछ नहीं खुला। इसका

सबब यह है कि या तो उन का मन वक़्त अभ्यास के संसारी चाहों या कामों की गुनावन या ख़्याल में लगा रहता है, या संसारी काम या उनकी गुनावन कर के अभ्यास में बैठते हैं, या उन को जो कुछ अन्तर में सुनाई या दिखाई देता है उस की उन को पहिचान और क़दर नहीं है ॥

२—ज़ाहिर है कि जब कोई अभ्यास के वक़्त दुनिया के कामों का ख़्याल या तरंग उठावेगा, उस वक़्त उसके मन और सुरत की धार उसकी इन्द्रियों की तरफ़ जारी होगी। जो कि मन से एक वक़्त में एक ही काम हो सकता है और रस ऊपर यानी ऊँचे की धार में है, तो भजन का रस मन को जब तक कि उसकी धार ऊपर के चैतन्य से चढ़ कर न मिले, क्योंकर आ सकता है ?

३—जो कोई सँसारी काम या उसका ख़्याल करके अभ्यास में बैठता है तो मन और सुरत उसके कामना की धार से भीगे हुए हैं और उस वक़्त उनका झुकाव और ख़्याल नीचे की तरफ़ हो रहा है, तो जब तक गहरा शौक़ और प्रेम अंग लेकर भजन में मुतवज्जह न होगा तब तक सुरत और मन निर्मल होकर न लगेंगे और रस नहीं आवेगा। इस सूरत में मुनासिब है कि कोई चितावनी या विरह या प्रेम के शब्द का, बड़ी पोथी सार बचन नज़म से लेकर होशियारी से पाठ करे और अपने ख़्याल को बदले तो अलबत्ता कुछ रस या आनन्द अभ्यास में मिल सकता है ॥

४—कुछ शख़्सों का यह हाल है कि जैसा कि उनको भेद स्थानों का मिला है, जब अभ्यास में बैठते हैं तो

चाहते हैं कि पहिला मक़ाम तो फ़ौरन ही खुल जावे और जो कुछ उसकी झलक दिखाइ देवे तो चाहते हैं कि बराबर उनके सामने खड़ी या क़ायम रहे और जो आवाज़ उनको पहले मक़ाम की सुनाई देती है तो उस की, जैसा कि चाहिए, क़दर नहीं करते। इस सबब से अभ्यास रूखा और फीका मालूम होता है। तीसरे तिल या सहस्रदल कँवल का नज़र आना और उसका ठहरना आसान बात नहीं है। क्योंकि यह मक़ाम वैराट स्वरूप और ब्रह्म के हैं। ऐसी जल्दी इन मक़ामों का देखना और ठहरना मुश्किल है, लेकिन कभी २ उनके स्वरूप या झलक का दिखाई देना और आवाज़ घन्टे की सुनाई देना यह भी बड़ा भाग है। आहिस्ता २ आवाज़ भी साफ़ और नज़दीक मालूम होती जावेगी और कभी-कभी स्थान का स्वरूप भी दिखाई देगा ॥

५—प्रेम और प्रतीत के साथ अभ्यास करते रहना मुनासिब है। और समझना चाहिये कि संत मत के अभ्यास का मतलब यह है कि सुरत और मन, जो पिंड में बँधे हुए हैं, ब्रह्मांड की तरफ़, और फिर उस के पार चढ़ कर पहूँचें। जो कोई ध्यान में अपने मन और सुरत को पहले या दूसरे मक़ाम पर जमावे और थोड़ी देर तक ठहरावे, तो चाहे उसे कुछ नज़र आवे या नहीं, सिमटाव और चढ़ाई का रस तो ज़रूर ही मिलेगा। इसी तरह जो ध्यान और भजन के वक़्त अपने मन और सुरत को जोड़ेगा और जहाँ से कि आवाज़ आ रही है, वहाँ तक आहिस्ता २ पहुँचावेगा, तो ज़रूर उसको आनन्द भजन का आवेगा। इस वास्ते मुना-

सिब है कि ध्यान और भजन के वक़्त दुनिया के ख़्याल छोड़ कर अपने मन और सुरत को पहले स्थान पर जमावे, और जो वे उतर आवें तो फिर वहाँ पहुँचा कर ठहरावे। इसी तरह बारम्बार करता रहे तो थोड़ा-बहुत शब्द भी सुनाई देगा और रूप भी दिखाई देगा और सिमटाव और चढ़ाई का जो आनन्द है, वह भी ज़रूर मिलेगा॥ मगर इन सब कामों के करने के वास्ते शौक़ और तड़प यानी विरह और प्रेम थोड़ा-बहुत ज़रूर दरकार है। जो अभ्यास के वक़्त, मन क़ाबू में न आवे तो मुना-सिब है कि बड़ी पोथी में से कोई विरह या प्रेम या चिता वनी का शब्द, जिसका दिल पर असर ज़्यादा होता होवे, ग़ौर से पढ़ कर भजन में बैठे तो मन की किसी क़दर हालत बदलेगी और भजन थोड़ा-बहुत दुरुस्ती के साथ बनेगा॥

६—और कभी कभी अपने मन को इस क़दर सम-झौती देना चाहिये कि जब तू दुनिया के काम करता है तो परमार्थ का ख़्याल नहीं करता और जब परमार्थ के काम करता है तो दुनिया के कामों का ख़्याल क्यों करता है, और जब-तब सच्चे मालिक के चरणों में प्रार्थना करता रहे कि मन निर्मल और निश्चल होकर भजन में लगे। ज़रा ग़ौर करने से मालूम होगा कि भजन और ध्यान के वक़्त दुनिया के ख़्याल उठाने में निहायत बे-अदबी सच्चे मालिक के साथ होती है, जैसे कि कोई अपने बाप या हाकिम के सामने जाकर बातें दूसरों से करे और उनका बचन न सुने और उनकी तरफ़ भी देखे, भी नहीं तो वे कैसे

राज़ी होंगे ? इसी तरह मालिक भी राज़ी नहीं होता है। और इसी सबब से अभ्यास में रस नहीं आता है। इस वास्ते मुनासिब है कि जो ज़्यादा न बने तो थोड़ा ही अभ्यास करे, पर जहाँ तक मुमकिन होवे दुरुस्ती और तवज्जह के साथ करे ॥

७—जब कभी भजन या ध्यान के वक़्त देह सुस्त या शिथिल होती हुई मालूम होवे या नींद आती मालूम पड़े तो उस वक़्त अभ्यास को छोड़ कर थोड़ी देर के वास्ते हाथ और पैर फैला देवे और जो ज़्यादा सुस्ती होवे तो उठ कर दो-चार क़दम टहले और फिर बैठ कर अभ्यास करे ॥

८—जब भजन के वक़्त ग़फ़लत या बेहोशी होती मालूम पड़े तो उस वक़्त नाम का सुमिरन और स्वरूप का ध्यान दो-चार मिनट के वास्ते करे और जो ग़फ़लत दूर न होवे तो जब तक ख़ूब होशियार न हो जावे, तब तक यही अभ्यास करे ॥

९—जब कोई ख़राब तरंगे या दुनिया के ख़्याल उठें तो नाम का सुमिरन और स्वरूप का ध्यान करके उनको हटाना चाहिये, और जो ऐसे ख़्याल दूर न होवें तो भजन को मुल्तवी कर के थोड़ी देर के वास्ते सुमिरन और ध्यान का अभ्यास करे और जब वे ख़्याल दूर हो जावें, तब फिर भजन में बैठ जावे। लेकिन जब मन ज़्यादा ज़ोर करे और सुमिरन और ध्यान में भी न लगने देवे, तो उस वक़्त भजन और ध्यान छोड़ देवे और दो-एक शब्द का पाठ समझ २ कर करे, यानी हर एक कड़ी को पाँच २ चार, चार

दफ़े पढ़े और उनका मतलब समझ-समझ कर अपने ऊपर घटावे और फिर अभ्यास में लगे और जो फिर भी मन रुजू न होवे और बे-फ़ायदा तरंगें उठावे, तो उठ खड़ा होवे और फिर दूसरे वक़्त पर अभ्यास करे ॥

१०—मालूम होवे कि राधास्वामी दयाल की दया की धार हर वक़्त जारी है, और जब तक अभ्यासी की सुरत और मन की धार उस धार के साथ न जुड़ेगी या उनको न छुएगी, तब तक उस धार का असर प्रकट मालूम नहीं होगा, और यह बात तब हासिल होगी, जब कि मन और सुरत विरह, अंग या प्रेम अंग लेकर अभ्यास में लगेंगे या संसार की तरफ़ से किसी सबब से दुखी होकर और राधास्वामी दयाल की तरफ़ सच्चे मन से दया की चाहना कर के, या किसी वक़्त किसी तरह का सच्चा ख़ौफ़ दिल में होगा और उस वक़्त राधास्वामी की मदद सच्चे दिल से माँगने के वास्ते भजन में बैठेंगे । ऐसे वक़्त और हालत में कुछ न कुछ दया की परख ज़रूर होगी और थोड़ा-बहुत रस और शान्ति ज़रूर आवेगी ॥

११—मालूम होवे कि जिस रोज़ खाने-पीने में कुछ ज़्यादती या बे-तरतीबी हो जावेगी, तो भी भजन का रस नहीं आवेगा और जो कोई बुरा काम किसी से बन पड़ेगा जिससे कि किसी के काम में नुक़सान पहुँचता हो, या पहुँचने वाला हो तो इस सबब से भी भजन में रस न आवेगा । ज़्यादा खाने से भजन के वक़्त धार ऊँची नहीं चढ़ती और पाप कर्म करने में सुरत और मन का झुकाव नीचे की

तरफ़ रहता है। इन दोनों बातों का अभ्यासी सतसंगी को ख़्याल रख कर अपनी सम्हाल जैसे मुनासिब होवे, करते रहना चाहिए ॥

१२—जिस किसी का मन दुनिया के ख़ास कामों में या किसी ख़ास शख़्स के साथ ज़्यादा बँधा है, या किसी के साथ उसकी सख़्त दुश्मनी या ईर्षा है, तो भी मालिक के चरणों का प्रेम उस के मन में बहुत हल्का रहेगा और इस सबब से अभ्यास में कम लगेगा और रस कम आवेगा ॥

१३—खुलासा यह है कि सच्चे सतसंगी को चाहिए कि जिस क़दर बने, हर रोज़ दुनिया की प्रीति मन से कम करता जावे और मालिक के चरणों में शौक़ और प्रेम बढ़ाता जावे तो जिस क़दर मन, दुनिया की मोहब्बत से ख़ाली होता जावेगा, उसी क़दर मालिक के चरणों में प्रीति बढ़ती जावेगी और उसी क़दर भजन और ध्यान का रस बढ़ता जावेगा, और दया अंतर में ज़्यादा मालूम होती जावेगी ॥

१४—जो कोई अपने मन को भोगों की तरंग उठाने और फिर उन में बर्तने से बिल्कुल नहीं रोकता है, और चाहता है कि दया ऐसी होवे कि उसका मन बिल्कुल निर्मल हो जावे, तो इस तौर से दया नहीं आती है। उसको चाहिए कि जहाँ तक उसका बस चले मन को रोके और जब कभी रोके से न रुक सके, तो शरमावे और पछतावे और मन को डर दिखावे कि

आइन्दा बहुत दुख भोगने पड़ेंगे और जब-तब प्रार्थना भी करता रहे, तब शायद कुछ मन की हालत आहिस्ता-आहिस्ता बदले। और ऐसे शख़्स को चाहिए कि सिवाय शर्माने, पछताने और प्रार्थना करने के, जिस रोज़ यह चूके और भूले तो उस रोज़ जहाँ तक बने ड्योढ़ा या दूना भजन, सुमिरन और ध्यान करे। इस से जो मलीनता कि भोगों में अन्दाज से ज़्यादा बरतने के सबब से पैदा हुई है, वह उसी दिन किसी क़दर साफ़ और हल्की हो जावेगी।

१५—और मालूम होवे कि पाँचों दूत (काम, क्रोध, लोभ, मोह, और अहंकार) और दसों इन्द्रियाँ जिन का झुकाव संसार की तरफ़ हो रहा है, ये सब परमार्थ के विरोधी हैं। उन में काम, क्रोध और ज़बान और आँख और कान इन्द्रिय जब मुनासिब और वाजिबी तौर से ज़्यादा संसार में वर्ताव करते हैं, तब अभ्यास में ज़्यादा विघ्न डालते हैं। उनकी सम्हाल हर वक़्त मुनासिब तौर पर रखनी चाहिए॥

१—काम के ज़्यादा और ग़ैर-वाजिब तौर के बर्ताव में सुरत और मन का, नीचे को झुकाव और उतार होता है, और इस सबब से अभ्यास में रस नहीं आवेगा।

२—क्रोध के वक़्त सुरत की धार देह में और देह के बाहर फैल कर बिखर जाती है और इस वजह से अभ्यास में रस नहीं मिलेगा॥

३—आँख और कान इन्द्रिय बहुत सी फ़िज़ूल सूरतों और चीज़ों को देख कर और सुन कर, अंतर में अभ्यास के वक़्त उनके ख़्याल पैदा करके हर्ज करती हैं और भजन का रस नहीं आने देती हैं॥

४–ज़बान इन्द्रिय, बहुत चिकना-चुपड़ा और मज़ेदार खाना मिक़दार से ज़्यादा खाकर और बेहूदा और फ़िज़ूल गुफ़्तगू करके अभ्यास में सुस्ती और ग़फ़लत और नापाक ख़्याल यानी मलीन तरंगें पैदा करती है। इस वास्ते मुनासिब है कि जिस क़दर बन सके, उस क़दर, इन के बर्ताव में सम्हाल और होशियारी रखनी चाहिए, नहीं तो अभ्यास में हमेशा ख़लल पैदा करते रहेंगे।

बचन छठा

उपदेश सतगुरु और संत भक्ति का

जिस किसी को कि सतगुरु मिलें तो मुनासिब है कि उनके चरणों में प्रीति करे और सुरत-शब्द का उपदेश लेकर अभ्यास अन्तर में करे, और स्वरूप का ध्यान और नाम का सुमिरन भी जिस नाम को कि वे बतावें, करे। और पहले ध्यान प्रथम मक़ाम पर करना चाहिए और जब ध्यान करते २ वहाँ मन लग जाय और रस आने लगे और सुरत और मन दोनों लगते और ठहरते मालूम पड़ें, तब फिर दूसरे मक़ाम पर ध्यान करे। फिर तीसरे मक़ाम पर और इसी तरह सत्तलोक तक। और जो सचाई और प्रेम अंग लेकर अभ्यास करेगा, उसको अपने मन और सुरत का मिल कर अंतर में थोड़ा-बहुत रेंगना यानी चलना मालूम हो सकता है। इसी तरह ध्यान करता हुआ धुर मक़ाम तक यानी संतों के देश तक पहुँच सकता है। और जिस किसी ने सच्चे मन से, आशा राधास्वामी धाम में पहुँचने

की बाँध कर अभ्यास सुरत-शब्द का और ध्यान स्वरूप का शुरू किया है, जिस क़दर कमाई कि उस से इस जन्म में बनेगी, वह उसको ध्यान के अभ्यास से कि कहाँ तक उसकी रसाई हुई है, आप मालूम हो सकती है और अख़ीर वक़्त पर उसको सतगुरु दयाल अपनी गोद में बैठा कर दर्शन कुल्ल मालिक राधास्वामी का करावेंगे। फिर अगर अभ्यास पूरा है और उस धाम में ठहरने के लायक़ है तो वहीं रहेगा, नहीं तो उलट कर दसवें द्वार में या एक-दो मक़ाम उसके नीचे ठहराया जावेगा, और वहाँ दर्शन और बचन मिलते रहेंगे और चरणों में प्रीति और प्रतीत बढ़ती रहेगी। फिर जब संत सतगुरु संसार में वास्ते उद्धार जीवों के, आवेंगे और सतसंग खड़ा करेंगे तो ऐसे जीवों को, जो ऊँचे स्थान पर ठहराये गये हैं, अपने संग लावेंगे और जहाँ-तहाँ जन्म देंगे और फिर वे सब जीव मौज से सतसंग में शामिल हो जावेंगे। और उनको पहिली कमाई एक दो या तीन रोज़ में ही संत सतगुरु का दर्शन करके और बचन सुन कर याद आजावेगी, और बाक़ी कमाई जो संत देश में पहुँच कर ठहरने के वास्ते ज़रूर होगी, वे जीव उस जन्म में या एक और जन्म में कर लेंगे, और सतगुरु का संग उनको बराबर मिलेगा जब तक कि धुर मक़ाम यानी राधास्वामी दयाल के चरणों में नहीं पहुँचेंगे।

बचन सातवाँ

चितावनी

१—संसार बिल्कुल नाशमान है और जीव को बार-बार

जन्म लेना और मरना होता है। यहाँ की कोई चीज़ इसके साथ नहीं जा सकती और हर शख़्स के हिस्से में सिवाय मामूली खाने और कपड़े वग़ैरा के कुछ ज़्यादा नहीं आ सकता है। इतनी बात मर्द और औरत सब रोज़मर्रा संसार के बर्ताव में देखते हैं। फिर भी इस क़दर चेत और होशियारी किसी को नहीं है कि दरियाफ़्त करें कि वे कहाँ से आये हैं और कहाँ जावेंगे, और फिर वहाँ जाकर दुख या सुख पावें तो वह कैसे मिलेगा और उसका क्या जतन करना चाहिए ॥

२—इस क़दर बे-परवाही है कि जो कोई दूसरा शख़्स चितावे, तो भी नहीं सुनना चाहते। और यह भी मालूम पड़ता है कि जो संसार के पदार्थों और इन्द्रियों के भोगों की आशा में लिपटे रहे और इन्हीं के वास्ते मेहनत करते रहे, और अपने कुटुम्बी और रिश्तेदारों की ख़ातिरदारी में उम्र भर खोई, तो ऐसी आदत और आशा और मंशा के मुआफ़िक़ इसी चक्र में और ऐसे ही लोक में रहना होगा। और यह चक्र जन्म-मरण और दुख-सुख का है क्योंकि जिस काम की जिसको ज़बर आदत होगी और जिसकी चाह ज़बर होगी, वहीं बासा ज़रूर होगा। यह बड़ी भारी ग़फलत का पर्दा आम की तबियत पर पड़ा हुआ है।

३—और जो सतसंग करते हैं, उनके ऊपर भी थोड़ी-बहुत ग़फ़लत छाई रहती है। जानते हैं कि जिस क़दर इस देह में अपनी रूह की सफ़ाई और चढ़ाई कर लें, उतना ही फ़ायदा है और उतनी ही मदद मिलेगी और उतना ही बचाव होगा, और फिर ग़ाफ़िल हैं कि यही काम दुरुस्ती से नहीं करते।

और यह बात ज़रूर है कि संसार के पदार्थों और इन्द्रियों के भोग में वाजिबी और ज़रूरी तौर पर बर्तें और जहाँ तक हो सके, अपने आप को भोग-विलास और ज़्यादातर मेल और मिलाप संसारी लोगों के साथ से बचावें। पर बारम्बार भूलते हैं और उनके मन का असली झुकाव उसी तरफ़ को ज़्यादा रहता है। इसका सबब यह है कि मन का ख़मीर बिल्कुल माया के मसाले का है॥

४—और ज़ाहिर है कि यह मन निहायत दर्जे का नादान और हठीला और निडर और बे-परवाह और बे-फ़िक्र है। उसकी आदत है कि जब कोई तरंग ज़बर उठावे, उस वक़्त किसी का डर नहीं मानता, बल्कि मौत का डर भी उस वक़्त दिखलाओ तो उसको भी नहीं मानता। किसी-किसी काम में दुख भी पा चुका है, पर ज़बर तरंग के वक़्त में, उस की भी याद दिलाई जावे तो भी कुछ असर नहीं होता है और भूल और ग़फ़लत यहाँ तक है कि परमार्थ के बचन बिल्कुल याद नहीं रखता, पर दुनिया के साथ बर्ताव में, चाहे हमेशा धोका खाता रहे, यानी जिनको अपने साथ प्रीतिवान समझे और अक्सर उन्ही से दुख पावे, पर उनके साथ ऐसा बँधा है कि उस बँधन को छोड़ नहीं सकता है॥

५—और यह भी मालूम होता है कि इस के अंतर में कोई समझाने वाली ताक़त ऐसी मौजूद है, यानी जब किसी काम को उल्टा-सीधा करना चाहता है तो अंतर में कोई मना करता है और होशियार करता है कि ख़बरदार!

ऐसा काम मत करना, वरना नुक़सान होगा। पर यह एक नहीं सुनता और जो चाह उपजती है, उसको कर गुज़रता है ॥

६—संत-महात्मा अनेक रीति से समझाते हैं और तरह-तरह डर नरकों और चौरासी के दिखलाते हैं और अमर सुख और आनन्द का, जो संतों के निज देश में प्राप्त होगा, भेद, और जुगत उसकी प्राप्ति की बताते हैं और किसी क़दर यह मन भी अपने बर्ताव को परख करके मालूम कर लेता है कि फ़लाँ बात में उसका नुक़सान है या फ़ायदा, फिर भी झोका नुक़सान की ही तरफ़ खाता है और फ़ायदे के काम की सुध नहीं लाता है। ऐसा जो मन हैं उसकी तरफ़ से परमार्थी को खूब होशियार रहना चाहिए। और चाहिए कि सच्चे मालिक राधास्वामी और सतगुरु की दया का बल लेकर सतसंग खूब होशियारी के साथ करे और सुरत-शब्द के अभ्यास को बराबर शौक़ के साथ जारी रखे तो मुमकिन है कि आहिस्ता-आहिस्ता कोई अर्से में मन दुरुस्त हो जावेगा। सिवाय इसके और काई जतन मन की दुरुस्ती का नहीं है ॥

७—जवानी में मन की तरंगों और इन्द्रियों के ज़ोर का रोकना अलबत्ता किसी क़दर कठिन है, पर अधेड़ अवस्था में और जब कि बुढ़ापे की अवस्था शुरू होती है, मन और इन्दियों का भोग-विलास की तरफ़ से रोकना बहुत कठिन नहीं है, पर जो सच्चा शौकीन और अनुरागी है, तो राधास्वामी दयाल की दया से उसका यह काम जवानी

में भी किसी क़दर आसानी के साथ बन सकता है, जो उसको सतगुरु का संग भाग से मिल जावे ॥

८—सच्च तो यह है कि हर एक जीव पर फ़र्ज़ है कि मन की सम्हाल जिस क़दर हो सके ज़रूर करे। वाजिबी और मुनासिब तौर पर तो उसका बरताव दुरुस्त है, पर किसी बात में ज़्यादती नहीं होनी चाहिए, नहीं तो परमार्थ की कार्रवाई और तरक़्क़ी में ख़लल पड़ेगा और जो काम कि थोड़े दिन में बन सकता है, उसको बहुत अरसा लगेगा ॥

९—जब तक कि मन और इन्दियाँ किसी क़दर क़ाबू में न आवेंगी, तब तक सुरत-शब्द अभ्यास का रस जैसा कि चाहिए, प्राप्त नहीं हो सकता। इस वास्ते जो नहीं चेतेगा और होशियार नहीं होगा, वही बड़ी दिक़्क़तें उठावेगा। यानी जो कोई चेत कर इस तरह की होशियारी नहीं करेगा, तो वह मन और इन्द्रियों और काल और माया के हाथ से झटके खाता रहेगा। बड़ी पोथी सार बचन छंद बंद में लिखा है :—

जगत जाल सब धोखा जानो। मन मूरख संग कीन्ही यारी ॥
इसका संग तजो तुम छिन २। नहिं यह लेगा जान तुम्हारी ॥

१०—इस वास्ते मुनासिब है कि इस बचन की प्रतीत करके और जो वक़्त कि हाथ में है, उसको ग़नीमत समझ कर, जिस कदर कार्रवाई अपनी रूह यानी सुरत की चढ़ाई

और मन से पीछा छुड़ाने की हो सके, ज़रूर होशियारी के साथ करे ॥

११—यह जीव इस संसार में जन्मानजन्म से बराबर धोखा खाता चला आता है। पर जिस जन्म में कि सतगुरु से मेला हुआ और भेद निज घर का मिला और असली हालत संसार की मालूम पड़ी, फिर धोखे के कामों में लिपट कर बर्तना और अपनी सुरत और मन की सम्हाल न रखना, यह बड़ी भारी ग़फ़लत और बे-परवाही की बात है ॥

१२—यह सही है कि मन का ज़ोर बड़ा भारी है और उसका रोकना किसी क़दर कठिन है और यह जीव बहुत निबल और कमज़ोर है, पर राधास्वामी दयाल की दया और सतसंग की मदद से, जो काम कि यह करना चाहे तो आहिस्ता-आहिस्ता उसका बन जाना और दुरुस्त होना कुछ मुश्किल नहीं है ॥

बचन आठवाँ

भेद मत का

१—जितने मत कि दुनिया में जारी हैं, सब का मतलब यह है कि मुक्ति या नजात हासिल हो। मुक्ति, बँधन और जन्म-मरण से छूटने और परमानन्द के प्राप्त होने को कहते हैं। इसके वास्ते दरियाफ़्त करना ज़रूर है कि कौन जुगत और तरकीब करके, जीव को यह बात प्राप्त

हो सकती है। दुनिया में जो २ सुख कि उम्र भर उनकी चाह करके हासिल होते हैं, सब नाशमान हैं। संत कहते हैं कि ऐसा देश भी है कि जहाँ अमर सुख और अमर आनन्द है। यहाँ, इस लोक में दुख-सुख मिला हुआ है। अगर्चे चैतन्य आनन्द स्वरूप है, पर उस पर माया के ग़िलाफ़ चढ़े हुए हैं। उन में बँधन कर के दुख-सुख होता है, जैसे जाग्रत में देह का बँधन कर के दुख-सुख मालूम होता है, पर स्वप्न में जो कि सुरत की धार देह के मक़ाम से किसी क़दर हट जाती है, तो इस देह का दुख-सुख मालूम नहीं होता। संत कहते हैं कि ऐसी तरकीब करनी चाहिए कि ग़िलाफ़ों के बँधन से रिहाई हो जावे। सब मतों में किसी न किसी सूरत की नक़्ल की पूजा बताते हैं या किसी निशान की पूजा या पोथी वग़ैरा की, जैसे कि नानक पंथी ग्रन्थ को गुरू मानते हैं। इस सुरत में यानी जीव की तवज्जह बाहरमुख रहती है और निज घर का पता और भेद नहीं मिलता। इस सबब से वहाँ सच्ची नजात हासिल होने का रास्ता, ज़ाहिरा कोई मालूम नहीं होता है। और वास्ते हासिल होने सच्चे उद्धार या मुक्ति के ज़रूर है कि ऐसी तरकीब मालूम होनी चाहिए कि जिससे सुरत यानी रूह का भंडार की तरफ़ लौटना होवे॥

२—सुरत का देह में दिमाग़ की तरफ़ से आना और मरते वक़्त उसी तरफ़ ऊपर को खिंच जाना, इन आँखों से साफ़ दिखाई देता है। और सब कहते हैं कि मालिक सब

जगह है और जीव उसकी अंश है। वह मालिक आनन्द स्वरूप है, और जीव जो उसकी अंश है, यह भी आनन्द स्वरूप है यानी जीव एक किरण उसी आनन्द स्वरूप सूरज यानी भँडार की है, पर इसका, उस भँडार से जुदा होकर, इस दुनिया में जड़ पदार्थों के साथ मुहब्बत कर के बँधन हो गया है। और जितना कि स्वाद, रस और मज़ा है, सब सुरत की धार का है। इसकी धार जिस इन्द्रिय के मक़ाम पर आती है, तब उस इन्द्रिय के भोग का रस और मज़ा मालूम होता है। इससे ज़ाहिर है कि सब रस और मज़े और स्वाद और आनन्द इसी चैतन्य में हैं और जिस जिसमें जिस क़दर कि रूह, चैतन्य की धार है, उसी क़दर रस और आनन्द है।

३—संत कहते हैं कि जहाँ से ये सब धारें रूह की आई हैं, वह भंडार महासुख और आनन्द का है। इसलिए जो कोई सच्ची नजात और पूरा सुख और अमर आनन्द चाहे तो वह उस मक़ाम में पहुँचे कि जहाँ से सुरत की धार आई है। वह देश भी अमर है और वहाँ का सुख भी अमर और अपार है और यह सुरत भी वहाँ पहुँच कर विदेह यानी ग़िलाफ़ों से अलेहदा हो जावेगी।

४—दुख-सुख सिर्फ़ माया की मिलौनी यानी देह या ग़िलाफ़ों के साथ बन्धन और भोगों की चाह के सबब से होता है। इस वास्ते भोगों की चाह कम करके, और ग़िलाफ़ों से रूह को हटा कर, जिस क़दर फ़ुरसत मिले, उस क़दर वक़्त अपना सुरत और मन की सफ़ाई और चढ़ाई

में ख़र्च करे। संत इसकी तरकीब बताते हैं। उसके मुवाफ़िक़ कार्रवाई करना चाहिए। जैसे कि जाग्रत में सुरत की बैठक आँख में है, चाहिए कि इसी मक़ाम से उस ऊँचे देश की तरफ़, जिसको राधास्वामी धाम कहते हैं और जहाँ से शुरू में सुरत का उतार हुआ है, आहिस्ता-आहिस्ता चलावे ॥

५—सच्चे मालिक का नाम राधास्वामी है और उन्हीं के चरणों में पहुँचना है ॥

६—और मालूम हो कि तरकीब संतों के अभ्यास की ऐसी आसान है कि जिसको लड़का, जवान और बूढ़ा, स्त्री और पुरुष, पढ़ा और अनपढ़, गृहस्थ और विरक्त, सब कर सकते हैं। एक, नशे की चीज़ और गोश्त का खाना मना है। गोश्त खाने से दिल, सख़्त और मोटा होता है और उसकी तवज्जह बाहर की तरफ़ होती है और जिस जानवर का गोश्त खाया जावेगा, उसका भी असर तबीयत में आवेगा। और नशे की चीज़ के इस्तेमाल से दिमाग़ की रगों में ख़लल पैदा होता है। और एक यह भी शर्त है कि अभ्यासी किसी शख़्स को अपने ज़ाती फ़ायदे या मतलब के लिए दुख न दे, मन कर के, बचन कर के या काया करके और जहाँ तक बन सके, सब को सुख पहुँचावे, नहीं तो दुख देने से तो बचे ॥

७—और खाने-पीने में इस क़दर होशियारी रखे कि बहुत पेट भर के न खावे। किसी क़दर हल्का रहे, जिससे

सुस्ती और नींद न आवे। सिर्फ़ यह शर्तें दरकार हैं, और बाक़ी अभ्यास की तरकीब ऐसी है कि बहुत आराम के साथ उसकी कार्रवाई हो सकती है और सब जगह और सब वक़्त बन सकता है। किसी तरह की रोक-टोक नहीं है, और इस अभ्यास में स्वाँस का रोकना नहीं होता है। और मतों में स्वाँस का रोकना बताया है। इस सबब से वह अभ्यास किसी से नहीं बना। और उसमें संजम और ख़तरे सख़्त हैं। इस सबब से गृहस्थी से तो यह अभ्यास हरगिज़ नहीं बन सकता और विरक्त के वास्ते भी मुशकिल और ख़तरनाक है।

८—अब चाहिए कि सुरत को, आशा अपने निज घर की बँधवा कर, आहिस्ता आहिस्ता चलावे। जो ऐसी आशा दृढ़ रही तो आहिस्ता आहिस्ता काम चल निकलेगा, पर इसको मियाद मुक़र्रर नहीं हो सकती कि किस क़दर अरसे में काम पूरा होगा। यह अनुरागी के शौक़ पर मुनहसिर है। जिस क़दर शौक़ तेज़ होगा, उसी क़दर रास्ता जल्दी तै होगा॥

९—चलने का रास्ता यह है कि जिस धार पर या सड़क से कि सुरत आई है, उसी रास्ते जाना होगा।

१०—रचना में कुल्ल कारख़ाना धारों का है, ख़्वाह वह नज़र आवें या नहीं, जैसे जब हम देखते हैं, तब रोशनी की धार आती है। जब सुनते हैं, तब शब्द की धार और जब सूंघते हैं, तब खुशबू या बदबू की धार आती है। और

सूरज की रोशनी यहाँ किरणों के बसीले से आती है। ऐसे ही सुरत किरण जिस धार पर कि उतर कर आई है, उसी धार पर उसको सवार कराकर ऊँचे की तरफ़ को चलाना चाहिये ॥

११—आदि ज़हूर, कुल्ल मालिक का, शब्द है और वही जान की धार है। और जहाँ धार होगी, वहाँ शब्द भी ज़रूर होगा और शब्द की बराबर कोई रास्ता दिखाने वाला और अँधेरे में प्रकाश करने वाला नहीं है। इस वास्ते चाहिये कि शब्द को पकड़ कर चढ़े और उसका भेद, भेदी से मिल सकता है। रूह यानी सुरत की धार पिंड में पहले दोनों आँखों के मध्य में जो तिल है, आकर ठहरी और वहाँ से सब देह में फैली। चाहिये कि इसी मक़ाम से इस धार को पकड़े। पहिले अभ्यास उसके समेटने का करे, जैसे नाम का सुमिरन और स्वरूप का ध्यान, और फिर शब्द का अभ्यास करे, उससे चढ़ाई होगी ॥

१२—शब्द अन्तर में जो हो रहा है, वह हर एक स्थान के मालिक के दरबार से आता है और हर एक स्थान का शब्द जुदा-जुदा है। इसका भेद लेकर चलना चाहिए।

१३—जैसे बाहर रचना धारों की है, ऐसे ही इस देह में भी कुल्ल कारख़ाना धारों का है, जिसको नरवस सिस्टम (nervous system) यानी रगों का मंडल कहते हैं। इन्हीं रगों में होकर रूहानी क़ुव्वत तमाम बदन में फैली हुई है। कुल्ल रचना में शब्द भरपूर है और सब बदन में काम उसी की

धारों से चल रहा है, पर जो शब्द कि आसमानी है, उसी को पकड़ कर चलना और चढ़ना होगा। पहले वक़्त में मूलाधार यानी गुदा चक्र से अभ्यासी चलते थे। संत कहते हैं कि असल बैठक जीव की आँखों के बीच में है। इस वास्ते संतों का रास्ता आँखों के मुक़ाम से चलता है॥

१४—संतों ने रचना को तीन बड़े दर्जों में तक़सीम किया है—एक, निर्मल चैतन्य देश जहाँ माया का नाम और निशान भी नहीं। दूसरा, निर्मल चैतन्य और निर्मल माया देश जहाँ कि माया निहायत पाक और शुद्ध है। और तीसरे, निर्मल चैतन्य और मलीन माया देश। हमारा देश मलीन माया के देश में है। जहाँ कि शुद्ध माया है, वह ब्रह्म देश है। और निर्मल चैतन्य देश में चैतन्य ही चैतन्य है वही संतों का दयाल देश है॥

१५—और फिर हर दर्जे में छोटे दर्जे शामिल हैं। दयाल देश, बतौर सिंध, अपार है। और ब्रह्म उसकी लहर है। और जीव बतौर बूंद के है॥

१६—संत मत की सब तरह बड़ाई है कि वह धुर स्थान का भेद देता है। और बाक़ी मत ब्रह्म देश से आगे नहीं गये। और संत देश की किसी को ख़बर न पड़ी क्योंकि सहसदलकँवल जोकि दूसरे दर्जे में नीचे का मुक़ाम है, यहाँ सब मतों का अंजाम है यानी यही पद सबका सिद्धान्त है। और संत मत यानी राधास्वामी पंथ में जो आसान तरक़ीब अभ्यास की बताई जाती है, वह हर एक शख़्स कर सकता

है। दूसरे मतों में जो जुगत चलने की मुक़र्रर है, वह निहायत मुश्किल और ख़तरनाक है और जो कि शब्द आदि ज़हूर कुल्ल मालिक का है, इस सबब से इसकी धार को पकड़ कर अभ्यासी धुर स्थान तक पहुँच सकता है। सिवाय शब्द के, जो और धारें हैं, वे नीचे के स्थानों से निकली हैं। उनको पकड़ कर अभ्यासी धुर तक नहीं जा सकता।

१७—और मालूम हो कि सुरत-शब्द का रास्ता प्रेम से तै होगा, क्योंकि जिसको जिस बात का सच्चा शौक़ है, वह उस काम को अच्छी तरह कर सकता है। जो कि यह मार्ग सच्चे मालिक के चरणों में, निज प्रेम का है, इस वास्ते चाहिये कि ऐसी प्रीति राधास्वामी के चरणों में पैदा करे, जैसे कि पुत्र-पिता के साथ करता है। जिसके हृदय में सच्चा शौक़ मालिक से मिलने का है, वही अधिकारी इस मत का है, और उसी को इस अभ्यास में रस और आनन्द आवेगा। और जिसको सच्चा शौक़ नहीं है, उससे यह अभ्यास भी नहीं बन सकता, क्योंकि यह काम इन्द्रियों और देह का नहीं है कि ज़बरदस्ती कराया जावे। जब तक मन में सच्चा शौक़ न पैदा होगा, यह मार्ग चल नहीं सकता। इन्द्रियों का काम ज़बरदस्ती भी आदमी कर सकता है। पर अन्तर में मन का चलना, बग़ैर प्रेम के, नहीं हो सकता है।

१८—दान, पुण्य वग़ैरा शुभ कामों में दाख़िल हैं, पर इन से मुक्ति हासिल नहीं हो सकती और अन्तर का परम सुख और परम आनन्द प्राप्त नहीं हो सकता। और दर-शन कुल्ल मालिक राधास्वामी का भी, जब तक कि सुरत उलट कर ऊँचे देश में न जावेगी, नहीं पा सकती है॥

१९—जिस शख़्स के हृदय में सच्चा शौक़ है और मालिक के चरनों में प्यार है, उसको शब्द सुनाई दे सकता है। और जो कि मालिक का मक़ाम दूर है और उसका जल्दी दर्शन हासिल नहीं हो सकता है, इस वास्ते उसका जलवा कभी-कभी अभ्यासी को दिखलाई देना, यह भी बहुत बड़ी बात है कि उसी को देखकर होश नहीं रहेगा और निहायत आनन्द और रस प्राप्त होगा। और फिर इसी तरह दिन-दिन रस और आनन्द बढ़ता जावेगा और एक दिन काम पूरा बन जावेगा॥

बचन नवाँ

उपदेश शब्द के अभ्यास का

१—इस दुनिया में सब जीवों के मन में सुख की चाह मालूम होती है और हर रोज़ उसके वास्ते मेहनत और मशक़्क़त करते हैं, और जो कुछ सुख यहाँ के हासिल होते हैं, वे पूरे-पूरे नहीं मिलते और जो मिले, तो वे सब नाशमान हैं और उनमें आनन्द थोड़ी देर का है॥

२—अक़्लमंद वह है कि जो दुनिया के हाल और सुखों को देख कर कि कोई यहाँ ठहराऊ नहीं है, खोज यानी तलाश करे कि परम सुख जो हमेशा एक-रस क़ायम रहे, वह कहाँ है। और जब कि इस दुनिया के छोटे-छोटे सुखों के वास्ते उम्र भर खपता रहता है और फिर वे सब सुख यहाँ के यहीं छोड़ जाता है, फिर उस सुख के लिये जो हमेशा एक-रस रहे, ज़रूर तवज्जह करना मुनासिब मालूम होता है ॥

३—दुनिया के सुखों की प्राप्ति की ख़्वाहिश में बार-म्बार जन्मना और मरना पड़ता है। इसलिए हर एक को चाहिए कि इन में प्रीति कम करे, और ऐसे मक़ाम के हासिल करने के वास्ते कोशिश करे कि जहाँ हमेशा पूरा आनन्द प्राप्त होवे ॥

४—विचारवान आदमी इस दुनिया की नाशमान हालत को देखकर ज़रूर दिल में ख़्याल करता है कि कोई ऐसा स्थान भी है कि जो अमर होवे, और जो सर्व सुख का भंडार हो, और जिसकी प्राप्ति के लिए एक-बार मेहनत करनी पड़े, और फिर हमेशा का आनन्द प्राप्त होवे और बारबार मेहनत न करनी पड़े, जबकि यहाँ हर जन्म में नये सिरे से मेहनत करके दुनिया के सुख मिलते हैं और फिर मरने के वक़्त वे एक दम सब छोड़ने पड़ते हैं ॥

५—संत कहते हैं कि यह परम सुख का भंडार तुम्हारे घट में मौजूद है ॥

६—आदि में सुरत, राधास्वामी के चरणों से उतर कर ब्रह्मांड में होती हुई और वहाँ से मन को संग लेती हुई दोनों आँखों के मध्य में आकर ठहरी। और वहीं इसकी असल बैठक है। फिर वहाँ से सुरत तमाम देह में फैली और एक-एक सुख या एक-एक क़िस्म का रस जो दस इन्द्रियों के वसीले से हासिल होता है, सुरत की एक-एक धार का है, जो इन्द्रिय द्वारे बैठ कर लेती है। अगर सुरत की धार उस इन्द्रिय पर न हो तो वह इन्द्रिय कुछ काम नहीं दे सकती है। और वह सुरत क़तरा या बूँद है, सत्त-पुरुष राधास्वामी सिंध की। अब जब कि एक क़तरा इस क़दर सुखदायक है तो उस सिंध के सुख की क्या महिमा की जावे ?

७—संत फ़रमाते हैं कि जो सुख कि सुरत के भंडार में है, वह अविनाशी है, और वह देश भी अविनाशी है, और तुम भी अविनाशी हो। पर, मन और माया का संग करके इस मृत्युलोक में दुख-सुख और जन्म-मरण भोगना पड़ता है। जब कि दुनिया के नाशमान और तुच्छ सुखों के लिए, रात-दिन उम्र भर मेहनत करते हो, तब उस सुख के लिए जो सर्व-सुखों का भंडार है, किस क़दर मेहनत करनी चाहिए ? जिस क़दर मुमकिन हो, कम से कम दो घंटे सुबह और शाम या चार घंटे सुबह और शाम तवज्जह के साथ, इस काम के वास्ते अभ्यास करना मुनासिब है, जो शौक़ होवे, क्योंकि हर एक गृहस्थी चार घंटे अभ्यास दो-

तीन दफ़े करके, हर रोज़ कर सकता है। बहुत से आदमी छः, सात या आठ घंटे रोज नौकरी करते हैं और कोई-कोई दस घंटे और बारह घंटे रोज़ मेहनत करते हैं। फिर जो कोई चाहे, वह कम से कम दो घंटे और भी चार घंटे बल्कि छः घंटे परमार्थ के काम के वास्ते निकाल सकता है॥

८—यह भी ज़ाहिर है कि सुरत यानी जीव का रास्ता आने-जाने का घट में होकर है। पैदा होने के वक़्त मस्तक से सुरत की धार पिंड में उतरती है और मरते वक़्त उसी तरफ़ को खिंचती हुई नज़र आती है। तो जिस धार पर सुरत उतरी है, उसी धार को पकड़ कर चलना चाहिए, क्योंकि जब मरते वक़्त चढ़ाव सुरत का मालूम होता है, तो उस वक़्त किस क़दर तकलीफ़ होती है? इस से पेश्तर उस को रोज़मर्रा आदत उस मकाम की तरफ़ चढ़ने की डालनी चाहिए। और इस अभ्यास में हर रोज़ नवीन आनंद मिलता जायगा और मरते वक़्त जो कष्ट या तकलीफ़ गृहस्थियों-संसारियों को होती है, वह अभ्यासी को नहीं होगी, बल्कि अंतर में खिंचाव के साथ आनंद बढ़ता जावेगा॥

९—दुनिया का सब सामान और सारे बाहरमुखी काम, सुरत के बहकाने वाले और भर्माने वाले हैं। यह सुरत के निज घर में पहुँचने का रास्ता नहीं है। जो कुछ यहाँ का सामान है, उस में से कोई चीज़ संग नहीं जाती। इस

वास्ते उनमें वाजिबी और ज़रूरत के मुवाफ़िक़ ही दिल लगाना चाहिए ॥

१०—जो दुनिया के भोग-विलास की चाह रखते हैं और जिन्होंने इसी देश को अपना वतन माना है और उसी के वास्ते मेहनत करते हैं, ऐसों के वास्ते संत-मत नहीं है। वे कर्मकाँड में यानी जो परमार्थी चाल कि उनके बुज़ुर्गों से चली आई है, उसी में लगे रहते हैं। उसी में थोड़ा-बहुत फ़ायदा उन को हासिल होगा यानी कुछ शुभ कर्म उनसे बन जावेगा और उसका फल यानी थोड़ा सुख मिल जावेगा, पर ये जीव चौरासी के चक्कर और जन्म-मरण से बच नहीं सकते। जिनको दुनिया और क़ुदरत का कार-ख़ाना देख कर, जन्म-मरण और देह के दुख-सुख से बचने और मालिक से मिलने का शौक़ पैदा हुआ है, उनके वास्ते राधास्वामी यानी संत-मत है। और उनको चाहिए कि जिस क़दर बन सके, विरह और प्रेम अंग लेकर, सुरत और मन को, शब्द में, जो घट-घट में भरपूर है, लगावें। और शब्द का भेद और जुगत चलने की, भेदी से मालूम होवेगी। कोई दिन के अभ्यास से अन्तर में ख़ुद मालूम होता जावेगा कि किस क़दर अभ्यास में तरक़्क़ी हुई, और पर्चे भी मिलते जावेंगे और दिन-दिन प्रेम बढ़ता जावेगा।

११—जो कोई ऐसा मान रहे हैं कि मालिक सब

जगह मौजूद है, फिर जाना-आना कहाँ है, यह बात दुरुस्त नहीं है, क्योंकि ख़ुद जीव, यानी सुरत, इस क़दर पर्दों या ग़िलाफ़ों में पोशीदा है कि जब तक वे न फोड़े जावें, तब तक अपना रूप नज़र नहीं आवेगा। और फिर वहाँ से सच्चे मालिक यानी भंडार का दर्शन और भी दूर है और कितने ही पर्दों में गुप्त है। इसी तरह यह भी पर्दे फोड़ कर धुर मक़ाम तक पहुँचना हो सकता है। इन लोगों की जब भी नज़र पड़ेगी तो बाहर के पर्दे या ग़िलाफ़ पर पड़ेगी, जिसको स्थूल शरीर कहते हैं और यह हर दम बदलने वाला और नाशमान है। फिर उनको सत्तपद का दर्शन कैसे मिल सकता है ? वेदान्त शास्त्र कहता है कि अन्नमई कोश, प्राणमई कोश, मनोमई कोश और ज्ञानमई कोश के परे जो आनन्द मई कोश है, वहाँ जीव यानी आत्मा का वासा है। इन पर्दों को फोड़ कर जीव यानी सुरत का दर्शन हो सकता है। और जब इन पर्दों के फोड़ने का अभ्यास कुछ भी नहीं किया जाता, तो इन बातों का कहना और सुनना बे-फ़ायदा है, क्योंकि ख़ाली बातों से मुक्ति या सच्चा उद्धार हासिल नहीं हो सकता। देखो किसी दरख़्त के बीज को कि उसकी रूह कितने पर्दों यानी तहों या छिलकों में और फिर उसके मग़ज़ के अन्दर किसी जगह पोशीदा है, जहाँ से कि वक़्त उगने के, कुला फूटकर, धार रूप होकर निकलता है। इसी तरह सब शरीरों में रूह यानी जीव या सुरत कितने ही पर्दों में पोशीदा है, और

उसका दर्शन सब पर्दे हटा कर अन्तर के चैतन्य यानी रूह की दृष्टि से हो सकता है। बाहर की रचना में यह एक-एक पर्दा एक-एक मंडल के साथ मुआफ़िकत रखता है। सो जब तक भेद इन पर्दों का दरियाफ़्त करके और उनके पार जाने की जुगती का अभ्यास नहीं किया जावेगा, तब तक रास्ता तै न होगा, और न जब तक सच्चे मालिक का दर्शन मिल सकता है। राधास्वामी मत में भेद इन पर्दों का, और जुगत उनके तै करने की, साफ़-साफ़ बताई जाती है और उसका अभ्यास करने से आहिस्ता-आहिस्ता सुरत यानी रूह, देह के मक़ाम से ब्रह्मांड की तरफ़ सरकती जावेगी। और जिस क़दर उस तरफ़ को चलती जावेगी, उसी क़दर उसको अन्तर में आनन्द और रस मिलता जावेगा। और देह और संसार के दुख-सुख और भोगों की चाह का असर कम होता जावेगा॥

१२—सोते वक़्त रूह यानी सुरत की धार आँखों और सब इन्द्रियों के मक़ाम से किसी क़दर अन्तर की तरफ़ हट जाती है। फिर चिन्ता और दुख-सुख, देह और संसार का, बिल्कुल नहीं व्यापता है। इसी तरह से जब डाक्टर लोग शीशी की दवा यानी क्लोरोफार्म सुँघाते हैं, उस वक़्त बदन के काटने की तकलीफ़ नहीं मालूम होती। और ऐसे ही नशे की हालत में भी सुरत किसी क़दर मामूली यानी आँख के मक़ाम से सरक जाती है कि उसी वक़्त सरूर यानी नशे का आनन्द आ जाता है, और चित्त भी उदार हो

जाता है क्योंकि उस वक़्त कोई इसके पास आवे, सब को उसी नशे की चीज़, चाहे जैसी क़ीमती होवे, मिस्ल शराब या अफ़यून के, खिला-पिला कर, अपने मुवाफ़िक़ नशे के सरूर में मस्त करना चाहता है। और दुनिया के सोच और फ़िक्र और रंज, किसी क़दर, बिल्कुल हट जाते हैं या दूर हो जाते हैं और इसका मन भी निष्कपट हो जाता है, क्योंकि नशे के वक़्त में जो कोई इस से कोई भेद की गुप्त बात पूछे तो बे-तकल्लुफ़ फ़ौरन ज़ाहिर कर देता है॥

१३—अब ख़्याल करना चाहिए कि जब कि नशे या क्लोरोफ़ार्म की मदद से, सुरत के थोड़े-बहुत आँख के मक़ाम से सरकने में इस क़दर दुख और दर्द और फ़िक्र देह और संसार का दूर हो जाता है, और अन्तर में एक तरह का आनन्द या रस आता है, तो जो कोई अभ्यास की कमाई से बा-इख़्तियार अपने यानी स्वतन्त्रता के साथ, चाहे जब अन्तर में सुरत को इधर से हटा कर ऊपर को चढ़ाने की ताक़त हासिल करेगा, उसको किस क़दर क़ुदरत की ताक़त नज़र आवेगी और आनन्द प्राप्त होगा? और सफ़ाई रूह और मन की होती जावेगी और देह और संसार के दुख-सुख का असर दिन-दिन कम होता जावेगा? इससे ज़ाहिर है कि सच्ची मुक्ति और सच्चा उद्धार एक दिन इसी जुगत यानी सुरत-शब्द की कमाई से हासिल होना मुमकिन है। और जो बाहरमुखी परमार्थी पूजा या चालें हैं या अन्तर में हृदय और नाफ़ के मक़ाम

के अभ्यास हैं, उनसे सच्चा उद्धार और रूह की अपने निज घर की तरफ़ चढ़ाई मुमकिन नहीं है ॥

बचन दसवाँ

सतसंगियों की रहनी का वर्णन

सवाल—राधास्वामी मत के सतसंगी की रहनी क्या होना चाहिए कि जिससे प्रीति और प्रतीत रोज़मर्रा बढ़ती रहे और अभ्यास का भी रस मिलता रहे ?

जवाब—सतसंगी को चाहिए कि जब से राधास्वामी मत का उपदेश लेवे,

(१) अपना खाना आहिस्ते-आहिस्ते चार-छः महीने के अर्से में अन्दाज़न चौथाई, और जो ज़्यादा शौक़ीन अभ्यासी है तो तिहाई, कम करे ;

(२) संसारी लोगों से मेल इस क़दर रक्खे कि जितना उसके व्यवहार की कार्रवाई के लिए ज़रूर है और फ़िज़ूल बैठक और बात-चीत उनके साथ न करे ;

(३) अपने रोजगार में किसी को धोखा न दे, अपने फ़ायदे के वास्ते, और न दूसरे का हक़ बे-बाजिब लेवे, और काम अपना दुरुस्ती और होशियारी से करे ;

(४) जहाँ तक बन पड़े, ऐसी बात-चीत कि जिसमें बे-मतलब और बे-ज़रूरत किसी की निंदा या स्तुति करनी

पड़े, न करे, और जहाँ तक बने, किसी से ईर्षा और विरोध और क्रोध न करे ;

(५) अपने फ़ुर्सत के वक़्त में सिवाय मामूली अभ्यास यानी भजन, सुमिरन और ध्यान के परमार्थी विचार या चिंतवन करता रहे, या दुनिया के हाल पर नज़र करके उससे अपने मन को समझौती देता रहे और क़ुदरत का हाल और मालिक की कारीगरी हर तरह की देख कर, उसकी महिमा मन में करता रहे। (हर तरह के कहने में कुल्ल रचना आसमान की और ज़मीन पर चारों खान की, सब आ गई) और जब कोई सख़्त वाक़आ या वारदात क़ुदरती सुनने में आवे, तब अपनी हालत की निरख-परख करके होशियारी बढ़ावे और मालिक का शुक्राना करे कि ऐसी आफ़तों से बचाये रक्खा है ;

(६) नशे की चीज़ों और मांस अहार से बिल्कुल परहेज़ करे ;

(७) मन में तरंगें बे-फ़ायदा, और फ़िज़ूल दुनिया की चाहों की न उठावे ;

(८) जो कोई संसारी चिंता या फ़िक्र या दुख, मन में आवे तो उसका रूप न बन जावे। जहाँ तक बने, विचार करके उस ख़्याल को हटावे और राधास्वामी दयाल की मौज का आसरा ले। और जो वह न हटे तो मुनासिब है कि उस वक़्त प्रार्थना के साथ ध्यान या भजन में बैठ जावे और उस रोज़ ज़्यादा तवज्जह और होशियारी के

साथ अभ्यास करके अपनी चिन्ता या दुख को राधास्वामी के चरणों में अर्ज़ करे, पर जवाब न माँगे। और बाहर जो तदबीर या जतन, दस्तूर के मुवाफ़िक मुनासिब होवे, वह उस के हटाने या दूर करने के वास्ते करे। पर फल उसका मौज के ऊपर छोड़ दे और पहिले हो से अपने मन में विचार करके सीधी और उलटी मौज के साथ मुवाफ़िक़त करने को तैयार हो जावे। इससे यह फ़ायदा होगा कि चिन्ता बार-बार और ज़्यादा नहीं सतावेगी ;

(९) जब सामान ख़ुशी का मयस्सर आवे तब उसमें बहुत न हरषे और न फूले, क्योंकि इस में सुरत फैलती है। उस वक़्त ऐसा ख़्याल करे कि जो अपने मन को सम्हाले रक्खेगा तो उसके अभ्यास में ख़लल न पड़ेगा, और नहीं तो मौज उसके मन को किसी न किसी तरह से उदास करके सम्हालेगी। ऐसा डर और ख़याल मन में रख कर अपनी सम्हाल करता रहे ;

(१०) जब कभी तबियत बीमार होवे या और तरह को तकलीफ़ होवे जिससे भजन और ध्यान में बैठ न सके, तो जैसे बने, लेटे-लेटे या बैठे-बैठे, मन या चित्त से चरणों का सेवन करता रहे। जो इसका मन या चित्त चरणों में लगा रहेगा, तो वह बीमारी या तकलीफ़ इसको कम व्यापेगी और जो ज़्यादा बीमारी या तकलीफ़ में यह भी न बन पड़े, तो मन से राधास्वामी नाम का सुमिरन ही

करता रहे और संग-संग थोड़ा-बहुत स्वरूप का भी ख़्याल रक्खे। इस तरह से भी तकलीफ़ ज़रूर थोड़ा-बहुत कम हो जावेगी ;

(११) जहाँ तक बन सके, किसी आदमी या जानवर या चीज़ में अपने चित्त का बंधन हद्द से ज़्यादा न करे, क्योंकि ज़्यादा बंधन में दुख-सुख ज़्यादा भोगना पड़ता है और अपना ख़्याल भी बँटा हुआ रहता है और भजन या ध्यान में कम सिमटता है ;

(१२) हर एक के साथ जिन से इसको काम पड़े, जहाँ तक मुमकिन होवे, मुलायमत या दीनता या प्यार के साथ बर्ताव करे। सो मुलायमत तो उनके साथ जो अपने से छोटे हैं, जो बराबर के हैं उनके साथ प्यार, और जो बड़े हैं उनके साथ दीनता ;

(१३) अपने मतलब के वास्ते किसी को न दुखावे, बल्कि जहाँ तक बन सके, सुख पहुँचाना चाहिए और जो कोई ऊँच-नीच बचन कहे, तो जहाँ तक मुनासिब होवे, उसकी बर्दाश्त करे, और किसी के साथ झगड़ा न पैदा करे। और जो अपना थोड़ा सा नुक़सान भी होवे तो भी जहाँ तक मुनासिब होवे, उसका सोच और ख़्याल न करे और अपनी तबीयत को झगड़े-बखेड़े और तकलीफ़ से बचाता रहे।

मंसा बाचा कर्मना, सब को सुख पहुँचाय।
अपने मतलब कारणे, दुक्ख न दे तू काय ॥ १ ॥

जो सुख नहिं तू दे सके, तो दुख काहू मत दे।
ऐसी रहनी जो रहे, सोई शब्द रस ले ॥ २ ॥

(१४) और जब अभ्यास में बैठे तो जो उस वक़्त विरह या प्रेम अंग नहीं है, तो अपनी कसरों के ऊपर ख़्याल करके, चित्त में दीनता लाकर प्रार्थना करता हुआ भजन करे, तो ज़रूर थोड़ा-बहेत मन स्थिर होकर रस पावेगा, क्योंकि जब मन का अंग दीन हुआ, उसी वक़्त थोड़ा-बहुत प्रेम अंग जागेगा। और जब प्रार्थना का असर दिल पर हुआ, उसी वक़्त प्यार अंग थोड़ा-बहुत पैदा हो जावेगा, तो उस तरफ़ से भी दया आवेगी ; और

(१५) मुनासिब है कि अपने मन की थोड़ी-बहुत चौकीदारी करता रहे कि फ़िज़ूल तरंगें न उठावे, और जो उठें तो उनको जल्द हटाता रहे, और जहाँ तक बन सके, दूसरों की कसरों पर नज़र न डाले और किसी पर तान न लगावे। हमेशा अपनी कसरों को देखता रहे और उनके दूर करने का जतन करता रहे। लेकिन जो कोई कि इसके सुपुर्द हैं या इसके साथ प्यार-भाव रखते हैं या इसके बचन को मुहब्बत के साथ सुनते हैं, तो उनको प्यार के साथ ख़ौफ़ दिला कर या जिस तौर से मुनासिब होवे, समझावे और कसरों के दूर करने का जतन बतावे। या जो कोई कि इसके संग में हैं और उनकी कोई चाल-ढाल इस क़िस्म की है कि जिससे बहुत हर्ज और नुक़सान होता

मालूम पड़ता है तो उनको एकांत में, या जिस तरह पर मुनासिब हो, समझाना वास्ते उस चाल के छोड़ने के और नसीहत करना दुरुस्त है। और जो वे न मानें तो उन के संग से जिस तौर से मुनासिब होवे, अपने तईं हटा ले और अपना बचाव कर लेवे ॥

यह थोड़ा सा हाल रहनी का बयान किया गया है। जो कोई परमार्थी है, वह अपनी हालत के मुआफ़िक़ हर जगह और हर वक़्त और हर काम में राधास्वामी दयाल की दया की तरफ़ नज़र रख कर जैसी-कुछ सम्हाल दरकार है, अपने आप विचार कर के कर सकता है। इस वास्ते इस मामले में कोई क़ायदा ख़ास मुक़र्रर नहीं हो सकता। हर एक आदमी अपने निर्मल मन और बुद्धि से थोड़े विचार के साथ हर एक काम में भलाई और बुराई आप समझ सकता है। और जो यह परमार्थी है, तो परमार्थ के क़ायदे के मुआफिक़ जिस तरह इसको अपने और पराये के साथ बर्ताव करना चाहिए, यह आप समझ कर मुनासिब तौर पर कर सकता है। थोड़ा सा दया भाव और कोमलता हृदय में होनी चाहिए। बाक़ी राधास्वामी दयाल की दया से सच्चे परमार्थी की सम्हाल आप हर हालत में होती रहेगी ॥

———

बचन ग्यारहवाँ

संत सतगुरु की महिमा और सुरत-शब्द अभ्यास की बड़ाई

१—सब लोग मालिक की तलाश में टटोलवाँ चले हैं। जिसको जहाँ तक का भेद मालूम हुआ, उसी को उसने सिद्धान्त समझा। और सच्चे मालिक का पता सिवाय संतों के, किसी को नहीं मिला। अक्सर लोग समझते हैं कि प्राण की साधना से सच्ची मुक्ति हासिल हो सकती है और तीन लोक के मालिक का दर्शन मिल सकता है। लेकिन प्राण की साधना गृहस्थी जीवों से तो बिल्कुल नहीं हो सकती, क्योंकि उसके संयम यानी परहेज़ ऐसे हैं कि जब तक गृहस्थी घरबार और रोज़गार को छोड़ कर अलेहदा न हो जावे, तब तक कुछ अभ्यास नहीं बन सकता। और फिर अभ्यास में ज़रा सी भी बद-परहेज़ी से ख़ौफ़ बहुत हैं—या तो कोई बीमारी ऐसी लग सकती है कि जन्म भर न जावे या फ़ौरन मृत्यु हो सकती है। जब गृहस्थियों से यह अभ्यास न बन सका तो गोया बड़ा हिस्सा जीवों का तो उद्धार के क़ाबिल नहीं हुआ। अब विरक्त जो जवान हैं, उनसे तो कुछ बन भी सकता है, पर वे भी उसके सख़्त संयम और परहेज़ वग़ैरा से लाचार होकर रह गये, और जो बूढ़े हैं, उनसे तो बिल्कुल नहीं बन सकता। जब परमार्थ का ऐसा हाल देखा, तब सब

जीव कर्म-धर्म और मूर्ति-पूजा और तीर्थ-व्रत वग़ैरा में लग गये और कोई २ थोड़ी विद्या हासिल करके उस में मग्न हो गये। पर सच्चे मालिक का पता और सच्चे पद की प्राप्ति की जुगत किसी के हाथ नहीं लगी। कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल ने जीवों के उद्धार का दरवाज़ा बंद देख कर आप संत सतगुरु रूप धर कर संसार में आकर अपना निज भेद आप प्रकट किया। और वह निज भेद किसी मत की पुरानी किताब में नहीं है। शब्द की महिमा सब मज़हबों में गाई गई है। और शब्द की जुगत हिन्दुओं और मुसलमानों के मज़हबों में थोड़ी-बहुत बयान की गई है, पर प्राण के रोकने के साथ। इस सबब से वह जुगत, किसी बिरले से बन पड़ी, पर आम लोग उसकी कमाई न कर सके, और इस वास्ते उनका उद्धार या मुक्ति नहीं हुई। कुल्ल मालिक ने सतयुग, त्रेता और द्वापर युगों में इस तरफ़ तवज्जह कम की, क्योंकि सब जीव माया के सामान के साथ खुश थे, यानी उस वक़्त में लोग ऐसे दुखी न थे, जैसे कि अब रोग, शोक और निर्धनता के सबब से दुखी हैं। और जब तक कोई दुख न होवे, तब तक जीव को चेत नहीं होता। अब इस वक़्त घोर यानी सख़्त कल-युग में लोग दुखी और रोगी और शोकी बहुत हैं, और माया के पदार्थों का विस्तार तो बहुत हुआ है, मगर निर्धन लोग बहुत हैं। इस सबब से वह सामान माया का हाथ नहीं आता और फिर उम्र भी कम हो गई है। ऐसी हालत देख कर, कुल्ल मालिक ने इस कलयुग में आप औतार

धर कर अपने मिलने की जुगत ऐसी आसान कर दी कि जिसमें प्राण रोकने की कुछ ज़रूरत नहीं, और ऐसा अभ्यास बतलाया कि जो सौ वर्ष का बुड्ढा भी कर सके और आठ वर्ष का लड़का भी कर सके, और हर उम्र के मर्द और औरत लेटे-लेटे और बैठे-बैठे कर सकते हैं ।

२—अब समझना चाहिए कि आदमी का रूप चित्त यानी तवज्जह है । जहाँ जिस का चित्त है, वहीं वह आप मौजूद है । जब किसी ने भेद लेकर अपनी पूरी तवज्जह कुल्ल मालिक के चरणों में लगाई, तो वह उस वक़्त वहीं यानी चरणों में मौजूद है और वहीं शब्द भी मौजूद है । शरीर जहाँ पड़ा है, वहीं पड़ा है । आँख इन्द्री से दृष्टि बाहर की तरफ़ जाती है और सूरतों को देखती है और कान के वसीले से बाहर का शब्द सुना जाता है । और जब कि आँख और कान दोनों बन्द करके और अन्तर का भेद ले कर, तवज्जह चरणों में लगाई तो जो आवाज़ आसमानी अन्तर में हो रही है और जिसकी धार हर वक़्त जारी है, वह आसानी से सुनने में आ सकती है और मालिक के नूर का जलवा भी दिखलाई दे सकता है । और इसी आवाज़ को पकड़ कर सुरत, दर्जे-ब-दर्जे ऊपर को चढ़ कर एक दिन राधास्वामी के चरणों में पहुँच सकती है । जितने रास्ते में ठेके या स्थान हैं, उतनी ही आवाज़ें भी हैं । उनका भेद संत सतगुरु या उन के साध या ख़ास सतसंगी से मिल सकता है ॥

३—संत सतगुरु, ख़ास मालिक का औतार हैं या

उसके ख़ास मुसाहिब हैं और कभी उस से जुदा नहीं रहते। अगर थोड़ी देर के वास्ते जुदा भी दिखलाई देते हैं, तो सिर्फ़ जीवों के उपकार के वास्ते, मगर असिल में वे कभी जुदा नहीं होते। हर हालत में इधर भी हैं और उधर भी हैं, यानी उनकी सुरत की डोरी थोड़ी-बहुत हर वक़्त कुल्ल-मालिक के चरणों में लगी रहती है। सिवाय उनके, या उनके साध या ख़ास सतसंगी के, कुल्ल मालिक और उसके धाम का भेद कोई नहीं दे सकता है और सुरत और शब्द का लखाव खोजी और दर्दी परमार्थी को इस तौर पर कि उसके चित्त में बचन ब-ख़ूबी समा जावे और तसल्ली हो जावे, दूसरा नहीं कर सकता ॥

४—शब्द, असली जौहर की धार है और वही सुरत की धार है यानी जहाँ पर कि वह धार आकर ठहरी, उसी को 'सुरत' कहा जा सकता है, और जब वहाँ से ब-दस्तूर फिर धार जारी हुई, तब उसी का नाम 'शब्द' हुआ और वह धारें 'शब्द' ख़्वाह 'सुरत' की धार कहलाईं। देह में शब्द और सुरत की कार्रवाई का एक दृष्टांत दिया जाता है, उस से कुछ हाल उस कार्रबाई का समझ में आ सकता है। और वह दृष्टाँत यह है—

५—जैसे कपड़ा बुनने की कल में या रेलवे या किसी और कारख़ाने में जहाँ एन्जिन से काम लिया जाता है, एन्जिन ऊँचे के मकान में लगाया जाता है और वहाँ से एक बड़ी धार पहले बड़े रस्से पर आती है, और उस बड़े

रस्से से छोटी छोटी रस्सियों पर, जो कितनी ही कलों से लगी हुई हैं, वह धार आती है और उस धार की ताक़त से सब कलें छोटी और बड़ी चलती हैं। पर यह क़ुव्वत की धार जो कार्रवाई करती है, दिखाई नहीं देती। अगर रस्सी टूट जावे तो धार का आना और उस कल का काम जिस से रस्सी बँधी थी, बन्द हो जावे। लेकिन यह रस्सी आप धार या धार की क़ुव्वत नहीं है। यह तो औज़ार है जिसके ऊपर धार सवार होकर आती है॥

६—इसी तरह से आदमी की देह में भी रगें हैं और उन्ही रगों में होकर रूह की धार मस्तक से आती है और देह के अंग अंग को, जो एक एक कल के मुवाफ़िक़ है, ताक़त देती है। यह धार भी नज़र नहीं आती, लेकिन उसकी कार्रवाई से उसका शरीर में आना मालूम पड़ता है, जैसे जब कोई सोते से जागा और कुछ काम करने लगा तो मालूम हुआ कि शरीर में रूह की धार आई। इन्द्रियों की कार्रवाई से रूप की धार का देह में आना मालूम होता है। इसी तरह जब बच्चा पैदा होता है, तब जो वह शब्द करता है, उससे मालूम होता है कि वह ज़िन्दा पैदा हुआ और जान की धार उसका देह में आई और नहीं तो वह मुरदा समझा जाता है॥

७—अब मालूम करना चाहिए कि सुरत और शब्द उस जौहर का नाम है जिसके सबब से तमाम शरीर में चैतन्यता और ताक़त फैली हुई है। सिर्फ़ आवाज़ का नाम शब्द नहीं है॥

८—कोई अजान लोग कहते हैं कि शब्द, आकाश का गुण है। यह लोग शब्द को सिर्फ़ आवाज़ समझते हैं। यह उनकी बड़ी भूल है। क्योंकि वह जौहर जिसको संतों ने 'शब्द' करके पुकारा है, आकाश की जान और उसका चैतन्य करने वाला है। उस जौहर यानी उस शब्द का कोई ख़ास रूप नहीं है और न उस में रंग और रेखा है। वह अकह, अपार और अनंत है और वही कुल्ल का कर्त्ता है। शब्द से ही कुल्ल रचना ज़ाहिर हुई और उसी के बल से ठहरी हुई है, और उसी की ताक़त और चैतन्यता तमाम रचना में है। उसी की धारें इन्द्रियों और देह को ताज़ा कर रही हैं और वह शब्द घट घट में मौजूद हैं। जो कोई अपने अन्तर में संतों के बचन के मुवाफ़िक़ ध्यान व तवज्जह करे, वह उस धार की आवाज़ को सुन कर और उस धार से मिल कर, उसका आनन्द ले सकता है॥

९—इस देह में दस इन्द्रियाँ, चार अंतःकरण और पाँच दूत यानी काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार की धारों ने बहुत भारी शोर डाल रक्खा है। इनकी तरफ़ से तबीयत जब किसी क़दर हटे, तब शब्द सुनाई दे। इस तरफ़ से तवज्जह को हटाना और उस तरफ़ को जाना, इस को 'शौक़' कहते हैं। जिस क़दर यह शौक़ बढ़ता जावेगा, उसी क़दर शब्द साफ़ २ और ऊँचे देश का सुनाई देगा और आनन्द बढ़ता जावेगा॥

बचन बारहवाँ

भेद नाम का

१—नाम की दो क़िस्में हैं; ध्वन्यात्मक और वर्णात्मक। ध्वन्यात्मक उसको कहते हैं, जिसकी धुन घट घट के आकाश में आप ही आप हो रही है और वर्णात्मक वह है कि जो ज़बान से बोला जावे और लिखने में आवे। वर्णात्मक नाम, ध्वन्यात्मक नाम का लखाने वाला है यानी उसका स्वरूप है, जिस क़दर कि बोलने में आ सकता है॥

२—ध्वन्यात्म नाम के तीन दर्जे हैं, उसी मुवाफ़िक़ जैसे कि संतों ने कुल्ल रचना के, तीन दर्जे मुक़र्रर किये हैं। पहले दर्जे का ध्वन्यात्मक नाम वह है कि जो निर्मल चैतन्य देश यानी संतों के देश में गाज रहा है, और वह "राधास्वामी" नाम है कि जो कुल्ल और सच्चे मालिक का नाम है और जो आदि धार के साथ अनामी पुरुष से प्रगट हुआ और जिसकी धुन ऊँचे से ऊँचे देश में, जिसको राधास्वामी धाम कहते हैं, आप ही आप हो रही है। इस नाम के अर्थ यह हैं कि 'राधा' आदि सुरत या आदि धुन या आदि धारा का नाम है और 'स्वामी' कुल्ल मालिक है, कि जिस में से कि वह धुन या धारा निकली। दूसरा नाम इसी दर्जे में "सत्तनाम" सत्तपुरुष है, जहाँ से दो धारें निरंजन और जोत की निकलीं और जिन्होंने नीचे उतर कर ब्रह्मांड की रचना करी॥

३—दूसरे दर्जे का ध्वन्यात्मक नाम ओंकार है। इस दर्जे में निर्मल चैतन्य और निर्मल माया की मिलौनी

है। इसी को अनहद शब्द और मूल नाद कहा है। इसी से हिन्दुओं के सूक्ष्म वेद की धुन, कि जो लिखने में नहीं आ सकती है, प्रगट हुई और इसी में से तीन लोक की रचना का मसाला निकला और इसी को ओंकार पुरुष कहते हैं। इस नाम का, वेद मत की महा प्रलय और संतों की प्रलय में, अभाव हो जाता है। पर सत्तपुरुष और राधास्वामी नाम हमेशा क़ायम रहते हैं। वहाँ किसी दर्जे की प्रलय या महा प्रलय का असर नहीं पहुँच सकता।

४—रचना के तीसरे दर्जे में भी जहाँ कि निरमल चैतन्य और मलीन माया की मिलौनी है, ध्वन्यात्मक नाम है। पर यह नाम सुरत यानी जीव चैतन्य कि जिसको बैराट स्वरूप कहते हैं उसके और मन के नाम हैं। और संत मत में इनका अभ्यास नहीं कराया जाता क्योंकि सुरत की बैठक छठे चक्र में है जोकि तीसरे दर्जे का सिर या चोटी है और उसके ऊपर से संतों का अभ्यास शुरू होता है। ओंकार पुरुष को गुरु और सत्तनाम सत्तपुरुष को सतगुरु और राधास्वामी को कुल्ल मालिक कहते हैं॥

५—इस से ज़ाहिर है कि राधास्वामी नाम सच्चे कुल्ल मालिक का सबसे ऊँचा और गहरा और पूरा नाम है। जो कोई अपना सच्चा और पूरा उद्धार चाहे, वह बग़ैर धुर धाम में पहुँचने के, नहीं हो सकता है और जब तक राधास्वामी नाम को अपने हृदय में नहीं बसावेगा और उसकी धार को पकड़ कर और रास्ते की मंज़िलों का भेद लेकर, और इस नाम को अपना साथी बना कर नहीं

चलेगा, तब तक काल और माया के जाल और विघ्नों से बचाव और धुर धाम में पहुँचना नहीं हो सकेगा। जैसे कि आदि में धुर स्थान से धार प्रकट होकर नीचे उतरी और किसी ठिकाने पर ठहर कर वहाँ की रचना उसने करी, इसी तरह उस स्थान से भी धार प्रकट हुई और ब-दस्तूर नीचे उतर कर दूसरे ठेके पर ठहरी और फिर वहाँ, पहिले स्थान के मुवाफ़िक़ रचना हुई और फिर वहाँ से धार नीचे को आई, इसी तरह जैसे कि ठेके और स्थान धुर धाम से सुरत के मक़ाम तक रचे गये, वही इस तरफ़ से चलने वाली सुरत के वास्ते मंज़िलें मुक़र्रर हुईं। और हर एक स्थान का शब्द जुदा-जुदा है। जो कोई संत सतगुरु या उनके निज सतसंगी अभ्यासी से भेद इन मंज़िलों और उनके शब्दों का लेकर विरह और प्रेम अंग के साथ उन शब्दों की धार, धुन को (जिसको ध्वन्यात्मक नाम कहते हैं) पकड़ कर चले, वही एक दिन आहिस्ता-आहिस्ता धुर मक़ाम तक पहुँच सकता है। राधास्वामी नाम जो कि मुराद आदि धुन या धार से है, वह कुल्ल नीचे के शब्दों की धार या धुन की जान है यानी उन सब शब्दों की धार के अंतर्गत वह धुन या धार मौजूद है। लेकिन वह, जिस क़दर धुर धाम से दूरी होती गई और जैसे मंडल में होकर उसका गुज़र हुआ, वैसे ही नीचे के चैतन्य और माया के खोलों में गुप्त होती चली आई। इस वास्ते राधास्वामी मत के अभ्यासियों को मुनासिब और ज़रूर है कि राधास्वामी नाम को अगुवा करके अंतर में अभ्यास

करें तो उस धुन या धार के साथ जो रास्ते के हर एक स्थान के शब्द से प्रकट हुई है, मेल होता जावेगा और उस धार को पकड़ कर सहज में सुरत चढ़ती जावेगी और आहिस्ता-आहिस्ता एक दिन राधास्वामी के चरणों में पहुँच कर अपने निज मालिक का दर्शन पावेगी ॥

६—वर्णात्मक नाम के अभ्यास से, जो क़ायदे के ब-मुजिब हो और दुरुस्ती से किया जावे, सफ़ाई हासिल होगी, और ध्वन्यात्मक नाम के अभ्यास से सुरत यानी रूह आकाश में यानी घट में ऊँचे की तरफ़ चढ़ेगी। लेकिन आज-कल ध्वन्यात्मक नाम का भेद, और जुगत उसके अभ्यास की, सिवाय राधास्वामी मत के अभ्यासियों के, और किसी मत में जारी नहीं है। वर्णात्मक नाम का अभ्यास अलबत्ता कर रहे हैं, लेकिन वह भी वग़ैर भेद और जुगत के। इस सबब से सफ़ाई का भी फ़ायदा जैसा कि चाहिए, उनको हासिल नहीं होता।

७—जो वर्णात्मक नाम कि आज-कल मशहूर हैं, वे दूसरे या तीसरे दर्जे के नाम हैं, और जो अभ्यास कि लोग कर रहे हैं, वह या तो ज़बानी सुमिरन है, बग़ैर पते नामी और उसके रास्ते के, या स्वाँसा से जाप करते हैं और या हृदय और नाफ़ के मक़ाम पर उसका उच्चारण शुरू करते हैं। मगर इन सब सूरतों में ठीक-ठीक पता नामी और उसके धाम और उसके रास्ते का किसी को मालूम नहीं। इस सबब से इस क़िस्म के अभ्यासियों को मेहनत और वक़्त मुफ़्त बर्बाद जाते हैं, और कुछ असर नाम के अभ्यास

का उनके दिल पर नहीं होता, यानी नामी की मुहब्बत और उसके मिलने का शौक़ पैदा नहीं होता। इस तरह पर चाहे कोई लाखों नाम लेवे पर उससे कुछ फ़ायदा परमार्थी नहीं उठा सकता है। जो वर्णात्मक नाम का अभ्यास जुगत के साथ और नामी का पता मालूम करके किया जावे तो जल्द अंतर में सफ़ाई हासिल होती हुई मालूम पड़े और मन में शौक़ भी पैदा हो। यह जुगत राधास्वामी मत में बहुत खोल कर समझाई जाती है और उसका फ़ायदा भी अभ्यासियों को जल्द मालूम होता है॥

८—अब जो कोई अपना सच्चा उद्धार चाहे, उसको मुनासिब है कि वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक नाम का अभ्यास, राधास्वामी मत की जुगत के मुवाफ़िक़, शुरू करे तो कोई दिन में, उसको, अपने अंतर में इस अभ्यास से मुक्ति प्राप्त होने का यक़ीन हो जायगा और सच्चे मालिक के चरणों में प्रेम दिन-दिन बढ़ता जावेगा।

९—सब मतों में नाम की महिमा कही है और हिन्दुओं के मत में ख़ास कर लिखा है कि बग़ैर नाम के उद्धार नहीं होगा। मगर लोग नहीं जानते कि यह महिमा किस नाम की है और कौन जुगत से उसका अभ्यास करना चाहिए जिससे सच्ची मुक्ति हासिल हो। अब यह भेद खोल कर कहा जाता है कि जिस नाम की ऐसी महिमा हिन्दू और मुसलमान और और मतों में कही गई है, वह ध्वन्यात्मक नाम संतों के दूसरे दर्जे यानी ब्रह्मांड के

धनी का नाम है और जिस नाम की संतों ने महिमा कही है, वह ध्वन्यात्मक नाम संतों के अव्वल दर्जे यानी निर्मल चैतन्य देश का है। इन नामों की आवाज़ को अंतर में चित्त देकर सुनना और उनकी धार को पकड़ कर दर्जे-ब-दर्जे चढ़ना, यह सुरत-शब्द का सच्चा अभ्यास है। जो कोई इस तौर से अभ्यास करे, वह थोड़े दिन में आहिस्ता-आहिस्ता अपने उद्धार होने का सबूत अपने अंतर में देख सकता है, और वर्णात्मक नाम, बे-ठिकाने, चाहे उम्र भर जपा करे, कुछ हासिल नहीं होगा ॥

१०—जो कोई दूसरे दर्जे यानी ब्रह्मांड के ध्वन्यात्मक नाम का अभ्यास राधास्वामी मत की जुगत के मुवाफ़िक़ करेगा और उससे आगे चढ़ने का, यानी सत्त-पुरुष राधास्वामी के चरणों में पहुँचने का, इरादा नहीं रखता है, तो उसका भी पूरा उद्धार नहीं होगा, यानी जन्म-मरण उसका, चाहे बहुत देर बाद होवे, जारी रहेगा। इस वास्ते सबको चाहिये कि पहले और दूसरे दरजे के ध्वन्यात्मक और वर्णात्मक नाम का भेद और जुगत लेकर अभ्यास में लगें तो कार्य पूरा होवेगा ॥

११—मालूम होवे कि ब्रह्मांड के ध्वन्यात्मक नाम को लक्ष और वर्णात्मक को वाच्य स्वरूप ब्रह्म का कहते हैं ॥

१२—सिवाय ध्वन्यात्मक और वर्णात्मक नाम के, जिनका ज़िक्र ऊपर हुआ, एक और क़िस्म के नाम भी हैं

जिनको कृत्तम कहते हैं यानी जो करतूत के ब-मूजिब नाम रक्खे गये, जैसे गोपाल, गिरधारी, वग़ैरा। यह नाम जिस वक़्त कि वह करतूत ख़त्म हुई, जाते रहते हैं और कर्ता भी उस काम का गुप्त हो जाता है। फिर ऐसे नामों के जपने से कुछ भी परमार्थी यानी जीव के उद्धार का फ़ायदा नहीं हो सकता। मगर लोग इस बात से बिलकुल बे-ख़बर हैं। और मालूम होवे कि जितने नाम तीसरे दर्जे के हैं, वे सब थोड़े बहुत इसी क़िस्म के हैं। इनके ज़ाप से चाहे थोड़ी-बहुत सिद्धि और शक्ति हासिल हो जावे, पर वे ऐसे अभ्यासी को, मन और माया यानी काम और क्रोध और मान-बड़ाई के चक्र में डाल कर तहतुलसराय, यानी चौरासी जोनों में भरमावेंगे ॥

बचन तेरहवाँ

सतसंग की महिमा

१—सतसंग की महिमा सब मतों में वर्णन की है, पर बहुत थोड़े लोग हैं जो इसकी क़दर जानते हैं। बहुत से लोग तो यह भी नहीं जानते कि सतसंग किसको कहते हैं। तीर्थों और मन्दिरों में बे-शुमार लोग जाते हैं पर सतसंग का खोज और उसमें शामिल होने की चाह किसी के दिल में मालूम नहीं होती। इन कामों में फल बहुत कम है और जो कुछ है भी, वह सैर और तमाशे में जाता रहता है ॥

२—सतसंग का फ़ायदा बहुत ज़्यादा है पर लोगों को उसकी क़दर और चाह बहुत कम है। सच तो यह है कि जब तक कोई संतों का गहरा संग नहीं करेगा और उनके बचनों को चित्त देकर नहीं सुनेगा और उन बचनों का मनन और विचार करके अपने फ़ायदे की बातों को छाँट-कर, थोड़ा या बहुत, उनके मुवाफ़िक़ बरताव नहीं करेगा तब उक उस पर परमार्थ का रंग किसी तरह नहीं चढ़ेगा और न उसके मन और बुद्धि की हालत बदलेगी और न उसका चलन दुरुस्त होगा। इस वास्ते सब जीवों को ज़रूर चाहिए कि अपने शहर में और जहाँ कहीं कि वे जावें, सतसंग का खोज कर के उस में जिस क़दर बन सके, शामिल होकर उससे फ़ायदा उठावें॥

३—अब समझना चाहिये कि सतसंग किसको कहते हैं। संतमत अथवा राधास्वामी मत में सतसंग नाम ऐसी सभा और संगत या जलसे का है, जहाँ कि सच्चे मालिक का निर्णय और उसकी महिमा और उस से मिलने के सच्चे रास्ते और जुगत का बयान होता होवे, और राजाओं और सूरमाओं और दातारों की तारीफ़ और हाल का ज़िक्र न होवे, और मुखिया ऐसी संगत के संत सतगुरू या साध गुरू होवें या उनका निज सतसंगी, जो प्रेम और सचौटी के साथ अभ्यास कर रहा हो, होवे, क्योंकि ऐसा सतसंग, बग़ैर संतों की मदद के जोकि आप मालिक से मिल रहे हैं या मिलने के लिए सच्चा अभ्यास कर रहे हैं और अपने तन, मन और इन्द्रियों को साधना के बल से पूरा २

या किसी क़दर क़ाबू में लाये हैं, नहीं चल सकता और न किसी को उससे जैसा कि चाहिए, फ़ायदा हासिल हो सकता है ॥

४—ज़ाहिर है कि जिस ने जिस बात की कमाई आप करली है, वह उस को दूसरों को भी अच्छी तरह समझा सकता है और कमाई भी करा सकता है और उसके बचन में भी किसी क़दर असर होगा। और जो कि विद्या और बुद्धि की मदद से महात्माओं की बानी और बचन को पढ़ कर सुनाते और समझाते हैं, न तो उनका बचन ठीक और दुरुस्त हो सकता, और न वे किसी को उसकी कमाई को जुगत बता सकते हैं और न कमाई करने वाले को मदद दे सकते हैं, बल्कि अंतर के भेद को, जिससे कि वे आप बिल्कुल ना-वाक़िफ़ हैं, उल्टा-पुलटा बयान करके लोगों को ग़लती में डालेंगे और कर्म-धर्म में भरवावेंगे। इस वास्ते उनका संग, सतसंग नहीं है, बल्कि सच पूछो तो कुसंग में दाख़िल है ॥

५—अब मालूम करना चाहिए कि जहाँ संत सतगुरु या साधगुरू बिराजते हैं या उनका कोई निज सतसंगी, सतसंग का मुखिया है तो वहाँ ज़रूर सच्चे मालिक का निर्णय होगा और यह भी बयान होगा कि किस तरह उसके चरणों में सच्चा प्रेम और भक्ति पैदा होवे, और कैसे वह दिन-दिन बढ़ती जावे, और कौन जुगत और अभ्यास से मन और इन्द्रियों का ज़ोर कम होवे, और दुनिया और उसके

सामान की चाह और क़दर किस तरह दिन-दिन हलकी होती जावे, और किस तौर से जीवों को व्यवहार और परमार्थ की कार्रवाई करनी चाहिए कि जिससे उनके पिछले कर्म कटते जावें और आयंदा को उनके सिर पर दुखदाई और फिर जन्म दिलाने वाले कर्म न चढ़ते जावें ॥

६—जब ऐसा सतसंग जीवों को मिले और वे चित्त देकर सच्चे शौक़ के साथ बचनों को सुनें, तब ज़रूर उनको परमार्थी समझ दिन-दिन बढ़ती जावेगी, और दुनिया और उसके भोगों का भाव और प्यार आहिस्ता-आहिस्ता घटता जावेगा, और जो जो भूल और भ्रम और उल्टी-पुल्टी समझ संसारियों और अनेक तरह के लोगों का संग करके उनके दिल में समाई हुई हैं, आहिस्ता-आहिस्ता दूर होती जावेंगी, और नाशमान और दुखदाई पदार्थों में उनकी पकड़ ढीली और कम होती जावेगी, और प्रेमी और भक्तिवान लोगों के साथ जो सच्चे मालिक के सच्चे चाहने वाले हैं और ख़ुद सच्चे मालिक के चरणों में, जोकि सर्व-ज्ञान और सर्व-आनन्द और सुखों का भंडार है, दिन-दिन प्रीति और प्रतीत बढ़ती जावेगी, और पाप कर्मों से, सच्चे मालिक का ख़ौफ़ करके, तबीयत हटती जावेगी। और जब ऐसे सतसंगियों को भेद रास्ते का घट में, और जुगत मालिक के चरणों में पहुँचने की सुनाई जावेगी तो वे शौक़ और उमंग के साथ उसके अभ्यास में लगेंगे और अंतर में रस और स्वाद अभ्यास का उनको आता जावेगा और सच्चे मालिक की दया की, जैसी कि वह सच्चे प्रेमियों के ऊपर

अपनी कृपा से करता है, अपने अन्तर में परख आती जावेगी। और तब सच्चा यकीन आहिस्ता-आहिस्ता मालिक की हर वक्त अपने अन्तर में मौजूदगी का, और हाज़िर-नाज़िर होने का दिल में पैदा होता जावेगा, और तब ही वे सच्चा ख़ौफ़ और सच्चा प्यार मालिक का अपने दिल में लाकर सचौटी के साथ बुरे कामों से परहेज और नेक कामों में कोशिश और पैरवी करेंगे ॥

७—जो कोई थोड़े दिन भी ऐसा सतसंग करेगा तो उस के भर्म ज़रूर दूर हो जावेंगे और अनेक तरह की फ़िजूल पूजा और रस्मों में अपना तन, मन, धन वृथा खर्च नहीं करेगा, और धोखा देने वालों के फंदे में नहीं फँसेगा, और तक़लीफ़ और आराम के वक़्त अपने मालिक को भूल कर इधर और उधर चित्त नहीं चलावेगा, यानी उनका मन डावाँडोल नहीं होगा, क्योंकि जिस वक़्त कोई शख़्स अपने मालिक को छोड़कर दूसरों से मदद माँगता है, तो साबित होता है कि या तो उसने अपने मालिक को समर्थ न जाना या उसकी मौजूदगी का यक़ीन उसके दिल में नहीं आया, तो इन दोनों सूरतों में वह शख़्स मुनकिर यानी नास्तिक हो गया। और जो दुनिया की जरा सी तकलीफ़ में ऐसी डावाँडोल हालत हो गई तो आख़ीर यानी मौत के वक़्त की हालत का क्या भरोसा हो सकता है। इस तरह का परमार्थ कुछ कार-आमद नहीं हो सकता है, न जीते जी और न मौत के बाद ॥

८—ग़ौर करके दुनिया का हाल देखने से मालूम होता है कि थोड़ी या बहुत लोगों की ऐसी हालत है। और सबब इसका यह है कि उनको सतसंग नहीं मिलता है और इसी वजह से मन और चित्त उनके हमेशा डावाँडोल रटते हैं, और बजाय मालिक पर यक़ीन और उस से मुहब्बत के, दुनिया का प्यार और ख़ौफ़ दिल में ज़बर समाया रहता है, और परमार्थ और स्वार्थ में अनेक तरह के भर्म और कर्म और संशयों में गिरफ़्तार रहते हैं, और अपने कर्मों का, फल (जो कि मन और इन्द्रियों को चाह के मुवाफ़िक़ पाप और पुण्य का ख़्याल छोड़ कर करते हैं) दुख-सुख भोगते रहते हैं। और अपने जीव के कल्यान के वास्ते कोई काम उनसे नहीं बनता, क्योंकि ख़ुद-मतलबी लोगों के बहकाने से जिस क़दर परमार्थी काम वे करते हैं, उनमें किसी क़दर आशा संसार के भोग-बिलास की लगी रहती है। इस सबब से उनका सच्चा उद्धार नहीं हो सकता है। हमेशा ऊँची-नीची देहों में दुख-सुख भोगते रहेंगे और जन्म-मरण की फाँसी कभी नहीं काटी जावेगी ॥

९—इस वास्ते सब जीवों को, जिन को थोड़ा-बहुत भी दर्द परमार्थ का है, मुनासिब है कि ऐसा सतसंग जिसका ज़िक्र ऊपर हुआ है, खोज कर, उसमें जिस क़दर बन सके, शामिल होवें और अभ्यास की जुगत लेकर जितना बन सके, उसकी कमाई करते रहें तो सच्चे मालिक की दया और संत सतगुरु के प्रताप से एक दिन उनका सच्चा उद्धार हो जावेगा यानी जन्म-मरण से छूट कर अपने

निज घर में, जो कि सच्चे मालिक का धाम है, पहुँच कर अमर हो जावेंगे और पर्म आनन्द को प्राप्त होंगे ॥

शब्द

आज करो गुरु संग प्रीति सम्हार ॥टेक॥
मन इन्द्री भोगन में अटके। जगजीवन संग अधिका प्यार ॥ १ ॥
जग की चाह बसी नित मन में। छिन-छिन उसका करत विचार ॥ २ ॥
ऐसे जीव करें जो सतसंग। बचन गुरू नहीं चित में धार ॥ ३ ॥
संशय भर्म धसे उन मन में। जग और कुल की रीति न टार ॥ ४ ॥
सतसंगी अपने को कहते। गुरू भक्ति दई रीति विसार ॥ ५ ॥
गुरू सतसंगी जो समझावें। रूसें निनिंदया करें पुकार ॥६॥
यह जीव रहते दया से खाली। गुरू को धोखा देत लबार ॥ ७ ॥
उनको भी स्वामी पर्म दयाला। देर अबेर लगावें पार ॥ ८ ॥
याते सच्ची भक्ति कीजे। सोच समझ कर धर गुरू प्यार ॥ ९ ॥
संत मत है सब मतों है से ऊँचा। धुर घर का पहुँचावन हार ॥१०॥

सच्चा सीधा सहज अभ्यासा। सहज करे सच्चा उद्धार ॥ ११ ॥

सतसंग कर समझौती लीजे। संशय भ्रम को दूर निकार ॥ १२ ॥

जगत वासना मन से तजना। जग जीवन को मत कर यार ॥ १३ ॥

अनेक तरंग उठें अस मन में। उनको जस तस मन में मार ॥ १४॥

प्रीति प्रतीत बसाओ हिय में। राधास्वामी नाम का कर आधार ॥ १५ ॥

जहाँ-जहाँ प्रीति लगी अब तेरी। वहीं-वहीं हुआ तेरा बंधन यार ॥ १६ ॥

सहज हटाओ मन को वहाँ से। ध्यान धरत गुरू रूप निहार ॥ १७ ॥

जब गुरू चरणन होय दृढ़ प्रीती। शरण धार परतीत सम्हार ॥ १८ ॥

सबसे गुरू जब प्यारे होई। तब कुल मालिक होय दयार ॥ १९ ॥

मेहर करें तुझ पर वे हरदम। सुरत चढ़ावें नौ के पार ॥ २० ॥

एक दिन पहुँचावें धुर घर में। राधास्वामी परम पुरुष दातार ॥ २१ ॥

———

बचन चौदहवाँ

भक्ति की महिमा

१—भक्ति नाम, प्रेम और इश्क़ का है और खैंच शक्ति और मिलाप शक्ति उसका स्वरूप या ज़हूर है। सब रचना प्रेम की शक्ति से प्रकट हुई और उसी के आसरे ठहरी हुई है॥

२—कुल मालिक प्रेम स्वरूप है और सब रचना का भी प्रेम स्वरूप है और प्रेम के आसरे सब काम इस रचना के जारी हैं। बिना प्रेम यानी शौक़ के, कोई आदमी काम नहीं कर सकता। इससे ज़ाहिर है कि बिना प्रेम या शौक़ के, कोई काम न तो दुनिया का दुरुस्त हो सकता है और न परमार्थ का। इस वास्ते संतों ने परमार्थ की कार्रवाई में प्रेम यानी भक्ति की मुख्यता रखी है।

३—भक्ति कुल्ल को पसंद है, क्या आदमी क्या जानवर। और भक्ति से हर कोई राज़ी होता है। प्यार और दीनता, भक्ति और प्रेम का ज़हूरा है, यानी जहाँ सच्चा प्रेम होगा, वहाँ सच्ची दीनता भी ज़रूर होगी। जैसे जिस किसी को धन की सच्ची मुहब्बत और चाह है, वह जहाँ से कि उसे धन प्राप्त होवे, वहाँ सच्ची दीनता के साथ बर्तता है। इसी तरह जिसको जिस चीज़ की सच्ची चाह है, वह उस चीज़ के हासिल करने को, जिस के वसीले से होवे, उसके साथ उस वक़्त सच्ची मुहब्बत और दीनता से पेश आता है॥

४—अब समझना चाहिए कि जिस किसी को सच्चा डर चौरासी और नर्कों का, मन में आया है और दुनिया के हाल और यहाँ के सब सामान के नाशमान होने की कैफ़ियत देखकर सच्ची चाह सच्चे सुख और अमर पद के हासिल करने की पैदा हुई है, वह जब तक कि सच्चे मालिक के साथ और उस शख़्स से, जो कि उसका भेद और उसके मिलने का रास्ता और जुगत बतावे, सच्ची मुहब्बत और दीनता नहीं करेगा, तब तक उस को भेद और रास्ता मालूम नहीं होगा और न सच्चे मालिक से उसका मेल होगा ॥

५—इस वास्ते संतों ने खोलकर कहा है कि जिन मतों में गुरू और मालिक के चरणों में प्रेम और दीनता की मुख्य करके ज़रूरत नहीं वर्णन की है, वे सब मत थोथे और ख़ाली हैं, और मन और बुद्धि के रचे हुए हैं और उन से जीव का कारज कुछ नहीं होगा यानी सच्चा उद्धार और सच्ची मुक्ति प्राप्त नहीं होगी ॥

६—सच्चा उद्धार और सच्ची मुक्ति से यह मतलब है कि देहियों के बंधन और उनके संग से दुख-सुख से छुटकारा पाकर, और मन माया के देश से न्यारा होकर, अपने निज देश यानी सच्चे मालिक के चरणों में प्राप्त होवे, जहाँ कष्ट और क्लेश और जन्म-मरण बिल्कुल नहीं है, और पूर्ण आनन्द और परम सुख सदा एक-रस रहता है ।

७—यह भी मालूम होना चाहिए कि जब तक

सच्ची दीनता और भक्ति, कुल्ल मालिक के चरणों में न होगी तब तक कारज पूरा न होगा। और भक्ति के वास्ते नाम, रूप, लीला और धाम भगवंत यानी मालिक का, मालूम होना ज़रूर है। जहाँ तक माया की हद्द है, वहाँ तक जितने नाम और रूप हैं, देर-अबेर वे सब नाशमान हैं। सन्तों का देश माया की हद्द के पार है और वहाँ का नाम और रूप और धाम, अमर और अविनाशी है, और वहीं सच्चे मालिक का स्थान है, और वहीं से आदि धार प्रकट हुई, और उसी से सब रचना उस देश की और फिर तीन लोक की पैदा हुई, और उसी धाम से सुरत यानी जीव अंश आया। इस वास्ते सब को, जो अपना सच्चा उद्धार चाहते हैं, मुनासिब है कि सच्चे मालिक का भेद लेकर भक्ति और प्रेम उसके चरणों में करें, और जुगत तै करने उस रास्ते की, संत सतगुरु या साध गुरू या उनके निज सतसंगी से दरियाफ़्त करके, प्रीति और प्रतीत और दीनता के साथ अभ्यास करें, तो सच्चे मालिक राधास्वामी दयाल की मेहर और सतगुरु की मदद से, आहिस्ता-आहिस्ता अभ्यास कर के, एक दिन धुर मक़ाम पर पहुँच कर, जीव का सच्चा कल्याण और पूरा कारज हो जावेगा।

८—और जुगत चलने की यह है कि जिस धार पर, सुरत, धुर मक़ाम से उतर कर आई है, उसी धार को पकड़ कर, घर को लौट जावे। और वही धार रूह और जान की धार और प्रकाश और नूर की धार और शब्द की धार है। जो संतों ने शब्द का भेद बताया है, उसी

मुआफ़िक़ धुन को सुनती हुई, सुरत, ऊपर को चढ़ सकती है। इस जुगत को सुरत-शब्द योग कहते हैं और उस के अभ्यास से दिन-दिन सच्चे मालिक के चरणों में मेल होता जावेगा, और इसी अभ्यास का नाम प्रेमाभक्ती है॥

९—जो लोग कि सच्चे मालिक से बे-ख़बर हैं, और सिवाय उसके, औरों की पूजा या भक्ति कर रहे हैं और उनके भी असली नाम, रूप और धाम की ख़बर नहीं रखते, तो ऐसी भक्ति से उनके इष्ट धाम की भी प्राप्ति नहीं होगी, और जो कि नक़ल बना कर पूजा और भक्ति करते हैं, उसका फ़ायदा तो बहुत कम है, और जीव का उद्धार इन दोनों सूरतों में किसी तरह मुमकिन नहीं है। इन से, शुभ कर्म का थोड़ा सा फ़ायदा होगा यानी कुछ सुख मिलेगा, पर जन्म-मरण कभी दूर न होगा।

१०—और जो लोग कि मालिक को अनाम और अरूप और सर्व-व्यापक समझ कर मानते हैं, उनके हृदय में मालिक के चरणों की भक्ति पैदा नहीं होगी, और न कभी उस सर्व-व्यापक स्वरूप से उनका मेल होगा, और न सच्चा उद्धार उनके जीव का मुमकिन है। ये लोग विद्या और बुद्धि के विलास वाले हैं। इन से मन और इन्द्रियों के रोकने और उनको क़ाबू में लाने की जुगत बिल्कुल नहीं कमाई जा सकती है। इस सबब से यह लोग ज़ाहिर में तो बहुत बातें बनाते हैं, पर अन्तर में हमेशा ख़ाली रहते हैं। जिस वक़्त यह लोग मालिक की स्तुति करेंगे या उसकी महिमा गावेंगे, उस वक़्त थोड़ा प्रेम

इनके हृदय में और ज़बान से ज़ाहिर होगा, पर वह ठहराऊ नहीं होगा और न उस की तरक़्क़ी होवेगी, क्योंकि उनका घाट बिना अंतरी अभ्यास के नहीं बदल सकता, यानी हमेशा मन और बुद्धि और इन्द्रियों के घाट पर उन की बैठक रहती है और वह घाट दुनिया की कार्रवाई का है। उस में मालिक का प्रेम थोड़ी देर के वास्ते जब तक उसका ज़िक्र या सिफ़त करें, आ सकता है। और जब ज़िक्र हो चुका तो फिर ब-दस्तूर दुनियावी हालत में उनका बरताव रहेगा। और वह हालत मालिक के प्रेम से ख़ाली रहती है॥

११—इस वास्ते संत मत ही सच्चा मत है, और जो कोई उस को मानेगा और सुरत-शब्द का अभ्यास करेगा, उस का सच्चा उद्धार होगा। और बाकी जीवों का जन्म मरण और नीच-ऊँच योनियों में चक्कर और फेरा किसी सूरत में बच नहीं सकता है॥

१२—जो कोई सच्चा खोजी और दर्दी है, वह सतगुरु या साध गुरू या संत मत के भेदी से मिल कर, सुरत-शब्द योग की जुक्ति दर्याफ़्त करके, उसके अभ्यास में लग कर, दिन दिन अपने अंतर में आनन्द और रस लेता जावेगा और गुरू राधास्वामी कुल्ल मालिक के चरणों में प्रीति और प्रतीत बढ़ाता, जावेगा और सच्ची शरण लेकर, कोई दिन अभ्यास करके, अपने उद्धार की सूरत अपने अंतर में आप देखेगा॥

———

बचन पन्द्रहवाँ

सच्ची शरण और सच्ची करनी के लिए किन बातों का पहिले निर्णय करना चाहिये

१—राधास्वामी मत के हर एक सतसंगी को चाहिये कि तीन बातों को अच्छी तरह निर्णय करके समझ ले, और उनकी सच्ची प्रतीत मन में धारण करे, तब सच्ची शरण कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल की थोड़ी-बहुत मन और चित्त और सुरत से ली जावेगी, और थोड़ा-बहुत अभ्यास सुमिरन, ध्यान और भजन का सचौटी के साथ बन आवेगा और उससे जीव का कारज एक दिन बन जावेगा ॥

२—वे तीन बातें ये हैं—पहले, प्रतीत इस बात की कि राधास्वामी दयाल कुल्ल मालिक और सर्व समर्थ हैं और हर वक़्त घट घट में मौजूद हैं। दूसरे, यह कि सुरत यानी जीव उन की अंश है, जैसे सूरज और सूरज की किरण। तीसरे, यह कि बिना सुरत-शब्द के अभ्यास के, और कोई मार्ग धुर पद में सहज और निर्विघ्न तौर से पहुँचाने वाला नहीं है, और न इससे बढ़ कर दूसरा रास्ता रचा गया है ॥

३—जब इन बातों की पूरी प्रतीत मन में आ जावेगी और कोई संशय या भ्रम इन के सच्चे होने की निसबत नहीं रहेगा, तब कुछ अभ्यास बन पड़ेगा और उसका फ़ायदा भी अन्तर में मालूम पड़ेगा। फिर थोड़ा-

बहुत सच्चा भाव और सच्चा भय सच्चे मालिक का मन में पैदा होगा और उसी मुवाफ़िक़ जीव का व्यवहार अंतर और बाहर सम्हलता जावेगा और दिन दिन प्रीति और प्रतीत चरणों में बढ़ती जावेगी और आहिस्ता-आहिस्ता एक दिन पूर्ण प्रेम हासिल हो जावेगा ॥

(४)—अब इन तीनों बातों का निर्णय खोल कर किया जाता है और वह इस दृष्टान्त से अच्छी तरह हर एक की समझ में आ सकता है : (१) देखो किसी दरख़्त का बीज, जैसे दाना ख़शख़ाश (जो कि पोस्त या अफ़ीम का बीज है) किस क़दर छोटा है, पर उस पर तीन तह यानी ग़िलाफ़ चढ़े हुए हैं और उसके अंदर मग़ज़ सफ़ेद रंग का है और उस मग़ज़ के किसी मक़ाम पर उस बीज की रूह, सुरत, का वासा है ॥

(२)—यह ग़िलाफ़ जो तह के मुवाफ़िक़ चढ़े हुऐ हैं, उसके दरख़्त के स्थूल और सूक्ष्म रूप का मसाला लिये हुए हैं। जब उस दाने की रूह या सुरत के मक़ाम से कुला फूटता है, यानी आदि धार सुरत की प्रकट होती है, उसी वक़्त से पाँचों तत्त्व और तीनों गुण और रोशनी और बिजली और खैंच-शक्ति और हटाव-शक्ति और चुम्बक-शक्ति वग़ैरा उस दरख़्त के रूप के बनाव में आपस में रल-मिल कर, सब तरह की मदद देते हैं और आकाश से मसाला खैंच कर उस दरख़्त का पूरा रूप बनाते हैं। और जब तक कि सुरत का उस देह यानी दरख़्त में वासा है, तब तक, ये शक्तियाँ और तत्व और

गुण उसकी ताबेदारी में हाज़िर रह कर, आपस में मेल के साथ कार्रवाई करते हैं। और इन में से कोई २ एक दूसरे के विरोधी भी हैं, पर जब तक सुरत मौजूद है, वह विरोध अंग ज़ाहिर नहीं होता, और जब सुरत देह को छोड़ देती है, तब वह सब आपस में लड़ कर, उस देह के रूप को बिगाड़ देते हैं। और जो मसाला कि आकाश से लिया था, वह भी ज़र्रा ज़र्रा होकर फिर आकाश में मिल जाता है। इसी तरह सब देहियों की रचना का हाल समझ लेना चाहिये। क्या मनुष्य, क्या चौपाये, क्या परिंद, क्या कीड़े-मकोड़े, क्या दरख़्त और बनस्पति—सब के बीज में सुरत, कई तह या ग़िलाफ़ों के अन्दर मग़ज़ में गुप्त रहती है, और जब समय पाकर अपने तईं प्रकट करती है, उसी समय से जिस क़दर रचना का मसाला है और जितनी शक्तियाँ हैं, वे सब उसकी ताबेदारी में हाज़िर रह कर, उसकी रचना के विस्तार में मदद देते हैं। इस से ज़ाहिर है कि यह अंश, समर्थ और ताक़त वाली है और कुल्ल रचना के मसाले और, शक्तियों पर इसका हुक्म है, यानी जिस क़दर रचना कि इस लोक में दिखाई देती है वह सुरत की की हुई है। यानी

(३)—सुरत अंश जो कि किरण रूप होकर सच्चे मालिक के चरणों में से अपनी धार पर सवार होकर इस देश में आई है, वह हर एक देश में बैठ कर कार्रवाई करती है। असल में वही सत्य है, और बाक़ी नाम और

रूप जो नज़र आता है, वह उसके आसरे सत्य मालूम पड़ता है, पर सुरत के देह छोड़ने पर नष्ट हो जाता है ॥

(४)—जब इस किरण रूप सुरत अंश की ऐसी गति है और समर्थता है, और सुरतें बे-शुमार इस रचना में आई हैं, तो वह भंडार जहाँ से सब सुरतें आईं, कुल्ल का मालिक और सर्व-समर्थ और सर्व-आनन्द और सर्व-ज्ञान रूप साबित हुआ ॥

(५)—यह बात साफ़ ज़ाहिर है कि जिस क़दर आनन्द और रस और स्वाद जीव को इस देह में मिलता है, वह सुरत की धार में है, क्योंकि जो वह धार इन्द्रिय के स्थान पर न आवे तो उस इन्द्रिय के भोगों में कुछ भी रस न मालूम पड़ेगा। इसी तरह जितनी किताबें और इल्म और हुनर और कारीगरी वग़ैरा जो इस लोक में मनुष्य या जानवरों से ज़ाहिर हुईं या होती हैं, उन सब का भंडार वही देहधारियों की सुरत है ॥

(६)—इससे सुरत और कुल्ल मालिक राधास्वामी का आनंद स्वरूप और ज्ञान स्वरूप होना, साबित हुआ, यानी कुल्ल मालिक राधास्वामी सर्व-समर्थ और महा आनन्द और महा ज्ञान स्वरूप और हर एक घट में मौजूद हैं और यह जीव यानी सुरत उन की अंश है, क्योंकि जो शक्तियाँ कुल्ल मालिक में हैं, वे इस सुरत में भी मौजूद हैं।

(७)—कुल्ल मालिक की मौज से कुल्ल रचना हुई, और हर एक सुरत अंश उसी क़ायदे के मुआफ़िक़, एक

एक पिंड रच कर उसका विस्तार करती है। और पिंड और ब्रह्मांड की रचना एक सी है और एक ही तौर और क़ायदे के ब-मूजिब होती है। सिर्फ़ इतना फ़र्क़ है कि कि वह छोटी है और यह बड़ी है, पर जो दर्जे और कार्र-वाई बाहर की बड़ी रचना में जारी हैं, वैसे ही पिंड में भी हैं ॥

(५)—कुल्ल रचना धारों की है। जितनी देह हैं, सब धारों या तारों को बनी हैं। जैसे कपड़ा तारों से बुना हुआ है या दरख़्त के डाले और डालियाँ तारों के मुट्ठे हैं, इसी तरह से मनुष्य की देह, धारों या तारों से बनी हुई है। और यह एक एक तार या रग एक एक नल है, जिन में होकर धार जारी रहती है। यही बनावट कुल देह की है। जब कोई बोलता है तो आवाज़ की धार के वसीले से बोल सुनाई देता है। ऐसे ही दृष्टि की धार के वसीले से दुनिया दिखलाई देती है ॥

(६)—जब कुछ रचना नहीं हुई थी, तब प्रथम कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल के चरणों से धार प्रकट हुई। यह धार शब्द और जान और प्रकाश की धार है। इसी से सब रचना ऊपर-नीचे के लोकों की हुई ॥

(७)—कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल का तख़्त हर एक के घट में मौजूद है। और वहीं से सुरत यानी जान की धार उतर कर दयाल देश यानी निर्मल चैतन्य देश और ब्रह्मांड और पिंड की रचना करती चली आई, और पिंड में दोनों नेत्रों के मध्य में अन्तर की तरफ़ बैठ कर

मन और इन्द्रिय और अंग अंग को अपनी धारों से ताक़त दे रही है और जो कि सुरत की धार ही आनन्द और रस और स्वाद और ज्ञान की धार है, तो उसी के सबब से रस और आनन्द देह धारियों को इन्द्रियों के द्वारे प्राप्त होता है ॥

(८)—अब जो कोई चाहे कि इस धार के भंडार में जो कि पूर्ण आनन्द और पूर्ण रस और पूर्ण ज्ञान का ख़ज़ाना है, पहुँच कर परम आनन्द और हमेशा के सुख को प्राप्त होवे, तो उसको चाहिये कि इस धार को पकड़ कर, उसके भंडार यानी कुल्ल मालिक राधास्वामी के चरणों में लौट जाय। और सिवाय इसके और कोई जुगत या रास्ता उस भंडार के प्राप्ति का नहीं है ॥

(९)—पिंड में मलीन माया, निरमल चैतन्य के साथ मिली हुई है और इस सबब से यहाँ देहियों का जल्दी भाव और अभाव यानी जन्म-मरण होता है ॥

(१०)—और ब्रह्मांड में शुद्ध माया की, निर्मल चैतन्य के साथ मिलौनी है। वहाँ की रचना की देहियों का बहुत काल पीछे अभाव होता है। और

(११)—निर्मल चैतन्य देश में, जो संतों का अथवा सच्चे मालिक का देश है, सब देहियाँ रूहानी यानी चैतन्य की बनी हुई हैं। वहाँ जन्म-मरण और क्लेश बिलकुल नहीं है। इस सबब से वहाँ का परमानन्द और विलास सदा एक-रस रहता है। इस देश की आज तक किसी मत को, जो दुनिया में जारी हैं, ख़बर नहीं हुई।

उसका हाल और वहाँ पहुँचने की जुगत, शब्द यानी सुरत और जान की धार पर सवार होकर, इस जुग में, दया करके, कुल्ल मालिक ने आप संत रूप धर के बताई। जो कोई अपना सच्चा उद्धार और सच्ची मुक्ति चाहे, तो वह सुरत-शब्द योग का अभ्यास करके, निज घर में पहुँच सकता है ॥

(१२)—और जितनी धारें, जैसे प्राण की धार और दृष्टि की धार और अमी की धार हैं, वे सब ब्रह्मांड यानी उस देश से जहाँ कि निरमल चैतन्य की निरमल माया के साथ मिलौनी हुई है, निकली हैं। इन में से किसी धार को पकड़ कर जो कोई चलेगा, वह ब्रह्मांड से आगे नहीं जा सकता है। इस वास्ते उसका जन्म-मरण भी चाहे बहुत काल के पीछे होवे, छूट नहीं सकता और पूर्ण आनन्द, बे-मिलौनी माया के, उसको प्राप्त नहीं हो सकता ॥

(१३)—इस सबब से संतों ने क़तई हुक्म दिया है कि जो अपने जीव का सच्चा कल्यान चाहे, वह शब्द की धार को पकड़ कर चले, तो एक दिन अभ्यास करता हुआ निज घर में पहुँच जावेगा ॥

(१४)—और मालूम होवे कि मालिक को सब कोई अरूप कहते हैं, सो अरूप का ध्यान किसी तरह नहीं बन सकता। पर शब्द जो उस के चरणों से प्रकट हुआ है, वह भी अरूप है। उस शब्द के आसरे मालिक का ध्यान और उस की धार को पकड़ कर, उस के चरणों में पहुँचना,

मुमकिन है। और किसी तरह से न तो उसका ध्यान हो सकता और न वह मिल सकता है॥

(१५)—सब मतों में कहा है कि आदि में शब्द हुआ और शब्द ही मालिक का स्वरूप है, और शब्द मालिक के संग है, और सब रचना शब्द से हुई। फिर ज़ाहिर है कि जो कोई शब्द की धार को पकड़ कर चलेगा, वह उस पद में, जहाँ से कि आदि में शब्द प्रकट हुआ, पहुँच सकता है। और किसी तरह उस पद की प्राप्ति हरगिज़ हरगिज मुमकिन नहीं है।

(१६)—ऊपर की लिखी हुई दलीलों से साफ़ साबित है कि सिवाय सुरत-शब्द के अभ्यास के, और कोई जुगत धुर पद में पहुँचने यानी सच्चे मालिक से मिगने की नहीं है। और जो कि शब्द की धार हो जान और सुरत या रूह की धार है और सुरत या जान से (जो कि कुल्ल रचना कीं पैदा करने वाली और चैतन्य करने वाली और पालन करने वाली है) बढ़ कर और कोई धार नहीं है, तो इससे साबित हुआ कि सुरत-शब्द योग से बढ़ कर, और कोई जुगत सच्चे मालिक से मिलने की रचना भर में नहीं है। अब जीवों को इख़्तियार है, चाहे इस बात को मानें या न मानें। पर जो कोई सच्चा खोजी और दर्दी परमार्थ का है, वह तो संतों के बचन के मुआफ़िक़ एक सुरत-शब्द योग का अभ्यास करेगा। और जिनके मन में इस लोक या परलोक के भोगों और मान-बड़ाई की चाह है, वे लोग संतों के बचन को नहीं मानेंगे, और अनेक रास्ते

और जुक्तियाँ जो पिंड के ऊँचे देश में अथवा ब्रह्मांड में पहुँचने की हैं, उन्हीं में भ्रमते और भटकते रहेंगे और उन्हीं देशों के आनन्द को परम आनन्द और वहाँ के मालिकों को सच्चा मालिक मान कर, उसके आगे जो कि संतों का देश है और जहाँ सच्चे मालिक का दर्शन प्राप्त हो सकता है, चलने और पहुँचने की इच्छा नहीं करेंगे। बल्कि जो उनको समझौती दी जावेगी तो ये लोग, बजाय मानने के वाद-विवाद करेंगे और झूँठी और बे-फ़ायदा तकरार उठा कर संत बचन को परतीत नहीं लावेंगे, और ऐसे जीवों के वास्ते संत मत का उपदेश भी नहीं है ॥

(१७)—जब कि सतसंग में निर्णय करके सच्चे परमार्थी को इन तीन बातों का निश्चय हुआ कि (१) राधास्वामी दयाल कुल्ल और सच्चे मालिक और सर्व समरथ हैं और (२) जीव उनकी अंश है और (३) सुरत-शब्द योग की कमाई से जीव, काल और माया देश से न्यारा होकर अपने निज घर यानी दयाल देश में पहुँच सकता है, और किसी तरह नहीं, तब उसको चाहिए कि कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल की शरण दृढ़ करके और संत मत के भेदी से जुगत सुरत-शब्द योग की दरियाफ़्त करके, इसी अभ्यास को, जितना बन सके, नियम से रोज़मर्रा करता रहे और उनकी दया की अपने अंतर में परख करता हुआ चले और अपने मन और इन्द्रियों की चाल की भी निरख करता रहे, और जब-तब चरणों में, वास्ते प्राप्ति दया के, प्रार्थना भी करता रहे, तो राधास्वामी दयाल की मेहर से, दिन दिन उसका

कारज बनता जावेगा और प्रीति और प्रतीत चरणों में बढ़ती जावेगी और उनकी दया से एक दिन कारज पूरा हो जावेगा। इस तरह हर एक सच्चा परमार्थी अपने जीव का कल्याण राधास्वामी दयाल की दया के बल से कर सकता है, और जीते जी कोई दिन अभ्यास करके अपने सच्चे उद्धार का सबूत अन्तर में देख कर उसका पूरा यक़ीन और विश्वास कर सकता है, और ज्यों ज्यों ऐसी प्रतीत बढ़ती जावेगी, उसके साथ ही प्रेम भी बढ़ता जावेगा और एक दिन प्रेम-सिंध या सच्चे मालिक से मेला हो जावेगा और फिर जन्म-मरण और काल-क्लेश से पूरा छुटकारा हो जावेगा।

बचन सोलहवाँ

वर्णन दर्जों का जो संतों ने रचना में मुक़र्रर किये हैं, और बड़ाई संत मत की

१—राधास्वामी दयाल ने जो दर्जे रचना में वर्णन किये हैं अथवा जो स्थानों का भेद दिया है, उस को सही मानना चाहिए और उसकी प्रतीत करके उसके मुआफ़िक़ अभ्यास में चाल चलनी चाहिए और धुर स्थान का पूरा पूरा यक़ीन करके वहाँ के पहुँचने का इरादा सच्चा और पक्का मन में धरना चाहिए॥

२—एक दृष्टांत दिया जाता है। उस से हाल कुल्ल दर्जों का जो राधास्वामी दयाल ने वर्णन किये हैं, अच्छी तरह समझ में आ सकता है। तिल का जो दरख़्त है,

उसके देखने से मालूम होता है कि उसकी ज़ाहिरी सूरत स्थूल रूप में दाख़िल है, और अंतर में जो अर्क़ कि जड़ से डाली और पत्तों तक रगों में होकर जारी रहता है, वह उसका सूक्ष्म रूप है, और बीज उसका कारण रूप है। और जिस वक़्त कि बीज को पेला यानी उस का मंथन किया, तब उससे तेल प्रकट हुआ और स्थूल और कारण रूप के खोल खल रूप होकर जुदा हो गए। यह तेल तुरिया रूप है। जब उसका भी मथन किया गया यानी उसको रोशन किया, तब उसकी रोशनी की लौ में यह दर्जे ज़ाहिर होते हैं :—

(१) पहले, सफ़ेद और साफ़ रोशनी। यह दयाल देश का रूप है। और इसका जो अख़ीर सिरा ऊपर की तरफ़ को है वह सुन्न के मक़ाम से मुआफ़िक़त रखता है या वह सुन्न के स्थान का वाचक है। और वाक़ी सफ़ेद रोशनी में दयाल देश की रचना के दर्जे गुप्त हैं॥

(२) और जहाँ से कि सफ़ेदी के ऊपर सुर्ख़ी शुरू हुई, वह त्रिकुटी का नमूना है॥

(३) और जहाँ से कि सुर्ख़ी के ऊपर जर्द रोशनी सब्ज़ी मायल शुरू हुई, वह सहसदलकँवल का नमूना है॥

(४) जहाँ से कि सियाही मायल रोशनी शुरू हुई और फिर धुआँ वग़ैरा, वह पिंडी रचना का वाच रूप है॥

३—इस दृष्टाँत में कुल दर्जे रचना के जो कि संतों ने पिंड के ऊपर ब्रह्मांड और दयाल देश में वर्णन किये हैं, साफ़ नज़राई पड़ते हैं और पिंड के दर्जे बीज और दरख़्त रूप में ज़ाहिर हैं, और उनका सूक्ष्म मसाला उस सियाही मायल रोशनी और धुएँ वग़ैरा में मौजूद है ॥

४—खोजी और समझने वाले परमार्थी को इस दृष्टांत से कुल दर्जों का जो पिंड, ब्रह्मांड और दयाल देश में बयान किये गये हैं, पूरा पूरा यक़ीन आ सकता है, और इस दृष्टांत के समझने में नज़र उन रूपों पर कि जिनका हाल लिखा गया है, रखनी चाहिए और इधर-उधर ख़्याल को नहीं फैलाना चाहिए ॥

५—इस दृष्टांत से सिर्फ इसी क़दर मतलब है कि उस से सुर्त के स्थूल, सूक्ष्म और कारण देह का स्वरूप समझ में आ जावे और फिर जो स्वरूप कि सुर्त ने ब्रह्मांड में उतार के वक़्त, सुन्न से सहसदलकँवल तक, धारण किये हैं, उनकी कैफ़ियत भी मालूम हो जावे और फिर यह भी मालूम हो जावे कि दयाल देश और उसके रचना के दर्जे सही हैं और वह देश पिंड और ब्रह्मांड के ऊपर है ॥

६—दयाल देश की रचना निहायत दर्जे की सूक्ष्म और लतीफ़ है। इसके दर्जों की तमीज़ इन आँखों से उस सफ़ेद रोशनी में जुदा २ नहीं हो सकती, पर उस सफ़ेदी में वह दर्जे ज़रूर गुप्त हैं।

७—एक दृष्टांत और दिया जाता है। उस से भी इसी क़ायदे पर दर्जों की समझ थोड़ी-बहुत आ सकती है। पर इस में वह दर्जे ऐसे साफ नहीं मालूम होते जैसे कि तिल और उसके तेल के दृष्टांत में। और यह दृष्टांत गाँडे का है। इसमें जड़ से शुरू करके अख़ीर पोरी तक तीन बड़े दर्जे हैं। पहले दर्जे में इसका अर्क़ बिल्कुल मीठा है और खारीपन नहीं है। और दूसरे दर्जे में थोड़ा २ खार शुरू हुआ। और तीसरे दर्जे में खार ज़्यादा है और मिठाई कम। फिर हर एक दर्जे में मुआफ़िक़ उसकी पोरियों के कितने ही दर्जे हैं कि वह स्थानों से जैसा कि संतों ने तीन बड़े दर्जे रचना में यानी दयाल देश और ब्रह्मांड और पिंड में वर्णन किये हैं, मुआफ़िक़त रखते हैं। और पहिले दर्जे में भी जो बिल्कुल मीठा है, कई दर्जे हैं और उनकी जांच उस की मिठाई के दर्जों से हो सकती है। इसी तरह, दूसरे और तीसरे हिस्सों में भी दर्जे मिठाई या कि मिलौनी खार के साफ़ मालूम होते हैं। ऐसे ही कुल्ल रचना में और हर एक पिंड में तीन बड़े दर्जे और फिर हर एक दर्जे में छोटे दर्जे मुआफ़िक़ उसी क़ायदे के, जो संतों ने बयान किया है, गुप्त या प्रकट मौजूद हैं॥

८—तिल और तेल के दृष्टांत में पिंड और ब्रह्मांड और दयाल देश के स्थान, रोशनी रूप में, बहुत अच्छी तरह रंग और रूप के साथ आँखों से नज़र आते हैं। और इस दृष्टांत से सच्चे खोजी को अच्छी तरह से संतों के बचन का यक़ीन हो सकता है, और कुल्ल रचना में वह

इन्हीं दर्जों की पहिचान, गुप्त या प्रकट, कर सकता है क्योंकि क़ुदरत का क़ानून और क़ायदा सब जगह और हर एक पिंड में, बड़ा हो या छोटा, थोड़ी कमी-बेशी के साथ यकसाँ है और यही सबूत संतों के मत की ऊँचाई और गहराई और पूरेपन का है ॥

९—इससे साबित होता है कि संतों का मत क़ुदरती है और उस में किसी तरह की बनावट या मन और बुद्धि की चतुराई और छल-बल को दख़ल नहीं है और जितनी कार्रवाई उस की है, क़ुदरती क़ानून के मुवाफ़िक़ है। पर मन और माया के क़ानून के बर-ख़िलाफ़ है, क्योंकि इनका मिलान और झुकाओ बाहर और नीचे की तरफ़ है और इसी सबब से सब जीवों की सुर्त, माया की रचना में और पिण्ड के नीचे के अंगों में फैल कर फँस गई। अब जो कोई संतों के बचन के मुवाफ़िक़ अपने निज घर की यानी दयाल देश की (जहाँ से कि आदि में धार प्रकट होकर ब्रह्मांड और पिन्ड की रचना करती हुई उतर आई) सुध लेकर, और इन बड़े दर्जों की रचना का, और हर एक छोटे दर्जे का, जिन को स्थान करके वर्णन किया है, भेद लेकर, उसी धार पर (जो कि शब्द की धार है) सवार होकर, कुल्ल भंडार यानी राधास्वामी दयाल के चरणों में प्रेम अंग के साथ चले, तो मन और माया की हद्द से पार होकर, एक दिन दयाल देश में पहुँच कर अमर आनन्द को प्राप्त होगा ॥

१०—और मालूम होवे कि माया की हद्द में जो दर्जे

हैं, यानी पिन्ड और ब्रह्मांड में चलने वाली सुर्त को ज़रूर मन और माया से मुक़ाबिला करके, उसके बल को राधास्वामी दयाल की दया की ताक़त लेकर तोड़ना पड़ेगा, यानी उसके रुख़ को, जो नीचे और बाहर की तरफ़ को झुकाओ रखता है, ज़रूर उलटाना पड़ेगा। यह काम अलबत्ता मुश्किल है पर राधास्वामी दयाल की दया से, जो उनके चरणों का प्रेम पैदा हो जावे, आसानी से, आहिस्ता आहिस्ता बन सकता है ॥

११—जो जीव कि माया के भोग और बिलास में फँस गए और उसी की आशा और मंशा दिल में रखते हैं, उनका छूटना, उनके पंजे से, मुश्किल है क्योंकि वे संतों के बचन को नहीं मानेंगे और न उनके हुक्म के ब-मूजिब कार्रवाई यानी अभ्यास करने को तैयार होंगे। इस वास्ते ऐसे जीव, ज़ाहिरी और विद्या-बुद्धि के परमार्थ में अटक कर रह गए और सच्चे परमार्थ की कमाई उन से न हो सकी। यही सबब है कि दुनिया में कसरत इसी क़िस्म के जीवों की है और उन्होंने अपने मन और इच्छा के मुवाफ़िक़ विद्या और बुद्धि से बहुत से मत गढ़ लिए, और उनहीं में राज़ी और मग्न हैं और नतीजे से बिल्कुल बेख़बर हैं। और जो सच्चे परमार्थ का हाल उन से कहा जावे, तो बजाय मानने के अपनी ओछी समझ से उसमें दोष निकालने को तैयार होते हैं और अपना असली नफ़ा और नुकसान नहीं विचारते हैं ॥

१२—यहाँ पर यह बात बयान करना ज़रूर है कि

सिवाय संत मत के जितने मत कि दुनिया में जारी हैं, वे या तो ब्रह्म और ईश्वर के (जिस को संत ब्रह्मांडी मन कहते हैं) या पिंडी मन और बुद्धि के बनाये हुए हैं। और इन दोनों का असली झुकाओ बाहर और नीचे की तरफ़ है, यानी निज घर का भेद और पता इन मतों में बिलकुल नहीं है और न चलने की जुगत का ज़िक्र है ॥

१३—और जो इनकी (यानी मन और माया की) हद्द में किसी दर्जे के हासिल करने के लिये किसी किसी मत में हिदायत भी है, तो उसके चलने की जुगत ऐसी मुश्किल राह से बताई गई है कि जिसकी कार्रवाई आम तौर पर मुमकिन नहीं है यानी पिन्ड और ब्रह्मांड में भी आला दर्जा किसी को हासिल नहीं हो सकता, और इसी सबब से किसी का सच्चा उद्धार क़तई नहीं हो सकता यानी जन्म-मरण और देहियों के साथ बन्धन नहीं छूट सकता ॥

१४—संत किसी पर जब्र और ज़बरदस्ती नहीं करते और न किसी को लोभ और लालच दिखलाते हैं, सिर्फ़ बचन सुना कर निज घर का भेद और उसके पहुँचने की जुगत समझाते हैं। जो कोई माने तो उसको मदद देकर निज घर में पहुँचने का अभ्यास कराते हैं और पहुँचाते हैं, और जो न माने तो उन पर उनके आइन्दा की बेहतरी के वास्ते दया की नज़र फ़र्माते हैं, पर उनकी मौजूदा हालत के बदलने के वास्ते, किसी तरह का ज़ोर या दबाओ नहीं डालते ॥

———

बचन सत्रहवाँ

मालिक के चरणों में भय, भाव और अदब

१—दुनिया में सब कोई पुरुष और स्त्री और लड़के अपने अपने बड़ों का भय, भाव और अदब करते हैं, जैसे स्त्री, पति का, पुत्र और पुत्री, माता और पिता का, लड़के, उस्ताद और शिक्षा देने वाले का, नौकर, अपने हाकिम और मालिक का, वग़ैरा २। और ये लोग जो काम या चाल या व्यवहार, जो इन के बड़ों की मर्ज़ी के मुवाफ़िक़ नहीं है या उनके ना-पसन्द है, नहीं करते, और उनके डर से ऐसे कामों में प्रवृत्त नहीं होते। इसी तरह सिवाय अपने बड़ों के, लोग अपनी २ बिरादरी और फ़िरक़े का भी ख़ौफ़ और ख़्याल रखते हैं कि कोई चाल ऐसी न चलें कि जिसमें बिरादरी और फ़िरक़े के लोग नाराज़ होकर तान मारें। और जो कोई जिस संगत या जलसे में शामिल होता है, उस संगत या जलसे के क़ायदे के मुवाफ़िक़ अपना बर्ताव करता है, नहीं तो उस संगत या जलसे में रहने के लायक़ नहीं समझा जाता है। और जो समझौती न माने तो निकाल दिया जाता है॥

२—जब दुनिया की सब कार्रवाई में लोगों का ऐसा बरताओ है तो सतसंग में जो मालिक का घर और जहाँ उसके मिलने की जुगत और रास्ता बताया और कमाया जाता है, किस क़दर सफ़ाई और सचौटी और होशियारी और प्रीति के साथ बरताओ और व्यवहार परमार्थियों का (जो उस सतसंग में दाख़िल होवें) होना चाहिये, यानी हर

हाल में यह ज़रूर और मुनासिब मालूम होता है कि उनका चाल-चलन और व्यवहार अपने-अपने दर्जे के मुवाफ़िक़, किसी क़दर दुनियादारों के चाल-चलन से जुदा होना चाहिये, यानी दुनिया के लोग तो अकसर अपने मन और मतलब के मुवाफ़िक़ कार्रवाई करते हैं, और उसमें किसी के दुखी-सुखी होने का ख़्याल बहुत कम करते हैं, पर परमार्थी को चाहिये कि दुनिया के कामों में अपने ज़ाती फ़ायदे के वास्ते किसी को दुख और तकलीफ़ न पहुँचावे और दूसरों के औगुन देखने और सुनने और उनको मशहूर या प्रकट करने की आदत छोड़ता जावे और बरताओ अपना हर एक के साथ सचौटी से रक्खे, और किसी को धोखा न देवे। इतना फ़र्क़ सतसंगी और संसारी लोगों के चाल और चलन में, जब से कि वे सतसंग में आये और सच्चे मालिक और संतों के बचन सुने और समझे, ज़रूर आहिस्ता आहिस्ता होना चाहिये, और नाक़िस जगह और नाक़िस कामों और नाक़िस सोहबत से परहेज़ करें। इसी तरह जितने विकारी अंग हैं, उनमें सतसंगी प्रेमी का बरताओ ब-निस्बत संसारी लोगों के दिन-दिन कम होना चाहिये और यह बात ठीक-ठीक जब बन आवेगी कि जब उस के मन में सच्चे मालिक का (जिसके चरणों में वह पहुँचना चाहता है और इस कारण उससे प्रीति लगाई है) सच्चा ख़ौफ़ और सच्चा प्यार और सच्चा अदब थोड़ा-सा होगा। और यह ख़ौफ़ और प्यार और अदब, जो उ[illegible] मालिक को मालिक जाना है, थोड़ा-थोड़ा करके ज़रूर मन[illegible] पैदा होना चाहिये ॥

डर जैसा चाहिए, मन में नहीं लाता (इस सबब से कि मालिक नहीं दीखता) तो भक्त और प्रेमी जन, जो सतसंग में मौजूद हैं, उन का डर और लज्जा जैसे कि लोग अपनी बिरादरी और फ़िरक़े का रखते हैं, ज़रूर दिल में आना चाहिए। और इस डर और लज्जा से भी बहुत बचाओ मुमकिन है। और जो ऐसा भी नहीं होता यानी सतसंगी का भी ख़ौफ़ और शर्म किसी के मन में नहीं आता, तो मालूम करना चाहिए कि जिसकी ऐसी हालत है, वह परमार्थी भी नहीं है या निहायत दर्जे का नादान और अपने परमार्थी नफ़े और नुक़सान से बे-ख़बर है। ऐसे लोग नाक़िस चाल-चलन से संगत को लाज लगाते हैं। इस वास्ते हर एक परमार्थी को, जो सतसंग में दाख़िल हुआ है, इस बात का सोच और विचार ज़रूर चाहिये कि मैं पहिले किस ग़ोल या संगत में था और अब किस सोहबत में दाख़िल हुआ और इस सोहबत का कैसा बरताव और क्या क्या क़ायदे हैं, और कोशिश करना चाहिये कि जहाँ तक बन सके, उन क़ायदों और बरताओ के मुवाफ़िक़ थोड़ी-बहुत कार्रवाई शुरू करे, नहीं तो उसका परमार्थी संगत में शामिल होना बे-फ़ायदा है ॥

९—जो कोई कहे कि मन और इन्द्रियाँ बड़े ज़बर हैं, उन से बस नहीं चलता, तो ख़्याल करो कि ऐसे ही मन और इन्द्रियाँ लड़कियों और लड़कों और मर्दों की ज़बर थीं, पर जब से लड़कियों की शादी हुई और लड़के उस्ताद के सुपुर्द हुए, और मर्द हाकिम के नीचे काम करने लगे,

तब से अपने तन, मन और इन्द्रियों की चाह और शौक़ को नीचे डाल कर अपने अपने बड़ों के हुक्म में बरतने लगे। फिर जो परमार्थी कहलाते हैं, वे गुरू और मालिक और सतसंगियों का ज़रा भी ख़ौफ़ न करके जो पुरानी चालों में बरतते रहें तो वे कैसे परमार्थी समझे जावें, और कैसे यक़ीन होवे कि उन्होंने गुरू और मालिक को बड़ा समझा और सतसंगियों और प्रेमी जनों को अपनी बिरादरी क़रार दिया ?

१०—ऐसे लोग जो सतसंग में पड़े रहेंगे तो कुछ थोड़ा परमार्थ उनको हासिल होगा, और वह सिर्फ़ दया से मिलेगा, पर बहुत देर और कुछ कष्ट और कलेश के बाद, क्योंकि उनके मन और इन्द्रियाँ सीधी तरह चलना नहीं चाहते और बिना दंड पाये दुरुस्त नहीं होंगे ॥

—

बचन अठारहवाँ

जो लोग कि सिवाय संत मत के अभ्यास के और और काम परमार्थी कर रहे हैं, उनको क्या फ़ायदा होगा

जो परमार्थी कार्रवाई आज कल दुनिया में जारी है, वह या तो (१) कर्मकांड या दान-पुण्य या (२) तीर्थ और मूर्ति और निशानों की पूजा या (३) व्रत या (४) नाम का जाप या (५) हठ योग या (६) प्राणायाम या (७) ध्यान या (८) मुद्रा की साधना या (९) वाचक ज्ञान या

(१०) पोथी और ग्रन्थ का पाठ करना और मन से स्तुति गाना और प्रार्थना करना वग़ैरा हैं। इन साधनों से संतों के बचन के मुवाफ़िक़ जीव के सच्चे उद्धार की सूरत नज़र नहीं आती, क्योंकि इन कामों में मालिक के चरणों का प्रेम और उसके दर्शन की चाह बिल्कुल नहीं पाई जाती। अब हर एक का हाल थोड़ा सा लिखा जाता है॥

(१) कर्मकांड और दान-पुण्य

जो जीव कि इन कामों में बर्त रहे हैं, चाहे जिस मत में होवें, उनका मतलब इन कामों के करने से या तो इस दुनिया के सुख और मान, बड़ाई और धन और सन्तान की प्राप्ति और वृद्धि का है, या बाद मरने के, स्वर्ग या बैकुंठ या बहिश्त में सुख भोगने का। इनके मत में न तो सच्चे मालिक का खोज और पता है और न उसके मिलने की जुगत का ज़िक्र है। जितने काम कि ये लोग करते हैं, सब बाहरमुखी हैं और उनका सिलसिला अंतर में सुरत और शब्द की धार के साथ बिल्कुल नहीं है। इस सबब से इन कामों में जीव का सच्चा उद्धार नहीं हो सकता॥

(२) तीर्थ और मूर्ति और निशानों की पूजा

जो लोग कि इन कामों में लगे हैं, उन के मन में थोड़ी-बहुत प्रीति और प्रतीत अपने इष्ट की रहती है, पर उसकी तरक़्क़ी नहीं होती और संसार की मुहब्बत, उस प्रीति पर हमेशा ग़ालिब रहती हैं यानी इष्ट की प्रीति का मुक़र्ररा वक़्तों पर थोड़ा-बहुत ज़हूर होता है, और थोड़ा-

बहुत तन, मन, धन भी उसके निमित्त लगाया जाता है। और बिशेष करके इस काम के करने में आशा संसार के पदार्थों की प्राप्ति की रहती है। और बहुत कम जीव हैं, जो मुक्ति की चाह लेकर इन कामों को करते हैं। ये लोग अपने इष्ट के भेद से कि वह कैसा है, और कहाँ है और कैसे उसकी प्राप्ति होगी, बे-ख़बर हैं, और वे यह भी नहीं जानते कि सच्ची मुक्ति का क्या स्वरूप है। और पहिले तो यह कसर है कि उनके इष्ट कृत्रिम यानी पैदा किये हुए हैं, और इस वजह से कोई मुद्दत उनके उम्र और ठहराव और उनके मक़ाम की मुक़र्रर है। जो कोई अपने इष्ट के धाम तक भी पहुँचे तो भी प्रलय या महा प्रलय के समय में उनका और उनके इष्ट का अभाव हो जायेगा और फिर रचना में आवेंगे। भक्ति के वास्ते चार बातों का जानना ज़रूर है :-(१) अपने इष्ट का असली नाम और (२) रूप और (३) धाम और (४) वहाँ पहुँचने का रास्ता और जुगत सो इन बातों से मूर्ति और निशानों की पूजा करने वाले बिल्कुल बे-ख़बर दिखलाई देते हैं। और जब ऐसा हाल है तो उनकी भक्ति ऊपरी रहेगी और अपने इष्ट के धाम में पहुँचना भी नहीं बन सकता। ये सब लोग टेकी हैं और जो कुछ कि ये अपने इष्ट के निमित्त तन, मन, धन थोड़ा-बहुत लगाते हैं, वह शुभ कर्म में दाख़िल होकर उसका फल थोड़ा-बहुत सुख इस दुनिया में या स्वर्ग-लोक, पितृ-लोक वग़ैरा में मिल जाता है॥

(३) व्रत

१—व्रत धारण करने से किसी क़दर सफ़ाई और सुबकी तन-मन की हो सकती है, पर शर्त यह है कि क़ायदे के साथ उसकी कार्रवाई की जावे। और जब कि बजाय भूखे रहने और जागरन और सुमिरन और भजन करने के, उमदा उमदा खाने फल-अहार के नाम से बना कर खाये जावें और बाक़ी वक़्त सोने और दुनिया के दिल बहलाओ के कामों में ख़र्च किया जावे, तो बजाय हासिल होने परमार्थी फ़ायदे के, और नुक़सान होने का ख़ौफ़ है। यह भी एक तरह का संयम वास्ते अभ्यासी परमार्थी लोगों के मुक़र्रर किया गया था, पर इस ज़माने में सिर्फ़ व्रत रखने पर मुक्ति का हासिल होना ठहराया गया है। सो यह बात सही नहीं मालूम होती और ऐसा ख़्याल दिल में बाँधना एक क़िस्म का भ्रम है। जो यह काम किसी से दुरुस्त बन पड़ा और वह शख़्स अभ्यासी नहीं है तो इसका फल यानी थोड़ा सुख उसको इस लोक में या परलोक में मिल जावेगा, पर मुक्ति का प्राप्त होना या इष्ट के धाम में पहुँचना, व्रत रखने से मुमकिन नहीं मालूम होता। और जो कोई अभ्यासी व्रत रक्खेगा, तो उसके अंतर में सफ़ाई और अभ्यास में किसी क़दर आसानी होगी, पर सच्चा उद्धार बग़ैर संतों के अभ्यास सुरत-शब्द योग के, किसी सूरत में नहीं हो सकता है॥

(४) नाम का जाप

१—आज-कल जो लोग नाम का जाप करते हैं, वे बहुत करके (१) ज़बानी नाम लेते हैं और मन और उनके चित्त और दृष्टि उस वक़्त डावाँडोल रहते हैं, यानी सुमिरन में शामिल नहीं होते हैं। इस सबब से ऐसे सुमिरन से, सिवाय थोड़ी सफ़ाई के, और कुछ हासिल नहीं होगा। (२) कोई कोई मानसी सुमिरन करते हैं पर उसमें नामी का पता और धाम का भेद नहीं मिलता, यानी बे-ठिकाने सुमिरन करते हैं। (३) इसी तरह स्वाँस के साथ यानी दम के आते-जाते वक़्त, बाज़े नाम लेते हैं, और (४) कोई कोई नाम की ज़र्ब दिल पर लगाते हैं, यानी चाहे बलन्द आवाज़ के साथ, चाहे हल्की आवाज़ के साथ नाम लेते हैं॥

२—ये सब लोग नामी और उसके धाम के पते और भेद से बे-ख़बर हैं और इस सबब से सिवाय सफ़ाई या किसी-किसी को थोड़ी सिद्धि के सिवाय और कुछ फ़ायदा हासिल नहीं हो सकता है, यानी न तो नामी के स्थान में पहुँच सकते हैं और न उसका दीदार और दर्शन पा सकते हैं। और जो कि उनका घाट नहीं बदलता, इस वास्ते न तो उनके मन में प्रेम प्रकट होता है और न उनका सच्चा उद्धार होना मुमकिन है॥

३—संतों ने नाम की बहुत महिमा करी है और कहा है कि बग़ैर गुरू और नाम के किसी का उद्धार नहीं होगा। पर उनका नाम सच्चे मालिक का ध्वन्यात्मक नाम है और उसका अभ्यास यह है कि मन और चित्त से नाम

को धुन को, जो घट २ में हो रही है, सुनना और धुन की डोरी पकड़ के नामी के सन्मुख पहुँचना। जब तक ऐसा न होगा, गहरा प्रेम मन में नहीं आवेगा और न हालत बदलेगी और न सच्चा उद्धार यानी मन-माया के देश से रिहाई होगी। और संत, नामी के धाम का रास्ता और स्थानों का भेद वग़ैरा समझाते हैं॥

(५) हठ योग

१—इस से मतलब यह मालूम होता है कि हठ करके अपने अंग-अंग को तोड़ना और मोड़ना और साफ़ रखना। और फ़ायदा उसका यह है कि तन और उसके अंगों की सफ़ाई और तन्दुरुस्ती हासिल होवे। पंच अग्नि तपना, और जल सेवन करना, खड़े रहना, मौन साधना, नंगे रहना, नेती, धोती और बसती क्रिया करना, और कीलों पर या मैदान में बैठना, और उल्टे लटकना वग़ैरा वग़ैरा-ये सब काम हठ योग में दाख़िल हैं। इनके करने से थोड़ी सफ़ाई अंतर की हो सकती है। पर न तो वह सफ़ाई क़ायम रह सकती है और न मालिक के चरणों का प्रेम दिल में पैदा हो सकता है, बल्कि बजाय उसके, अहंकार और मान और अपनी स्तुति और बड़ाई की चाह बहुत ज़बर मन में समा जाती है। और अक्सर लोग इन में से बहुत से कम चौराहों पर और मेलों और तमाशों में सड़क पर, आम तौर से करते हुए नज़र आते हैं, और ज़ाहिरा उनका मतलब धन पैदा करना और अपनी स्तुति कराना मालूम होता है।

२—पिछले वक़्तों में ये काम स्थूल शरीरधारी और स्थूल बुद्धिवाले जीवों की दुरुस्ती के लिए संयम के तौर पर जारी किये गये थे। यानी उस वक़्त के बुज़ुर्गों ने जैसी-जैसी जिसकी हालत देखी, उसकी सफ़ाई और स्थूलता के दूर करने के लिए और आहिस्ता-आहिस्ता ऊँचे साधन जैसे अष्टांग योग, यानी प्राणायाम या मुद्रा के साधन के लिए तैयार करके के वास्ते, इन कामों की हिदायत की थी। पर समझना चाहिए कि ये सब काम जो उन्होंने बताये, एक-एक अंग के साधन के वास्ते थे। और यह निहायत स्थूल तरीक़ा नये सीखने वालों के लिए जारी किया था कि जिससे वर्षों तक सफ़ाई कराते रहें और फिर भी बहुत कम जीव ऐसे निकले कि जिन से यह साधन बन पड़े हों और फिर वे ऊँचे साधनों में लग गये हों। बल्कि ऐसा हुआ कि एक-एक साधन में सब के सब अटक कर रह गए, और उसी को परमार्थ समझ कर और लोगों की वाह-वाह और बड़ाई सुन कर मगन हो गये, और जगत को अपने साधनों को तमाशे के तौर पर दिखा-कर अपने रोज़गार की सूरत निकाली और अहंकार बढ़ा कर जो सफ़ाई का उस साधन से मतलब था उसको भी खो बैठे और अहंकार और लोभ की मलीनता और पैदा करली ॥

३—इन कामों के करने वालों के मन में ज़रा भी प्रेम मालिक का नहीं आता और न उसके मिलने की ख़्वाहिश रखते हैं। फिर ऐसे जीवों का उद्धार कैसे होवे ?

इस करनी का फल चाहे मान, बढ़ाई और धन, इसी जन्म में, इसी लोक में पावें, या थोड़ा सुख अपनी-अपनी सफ़ाई के मुवाफ़िक़ परलोक में यानी स्वर्ग वग़ैरा में हासिल करें, या अपनी चाह के मुआफ़िक़ दूसरे जन्म में राजा या हुकूमतवान या धनवान होकर दुनिया का भोग-विलास करें ॥

(६) प्राणायाम यानी अष्टांग योग

१—इस योग के अभ्यासी, योगी और योगेश्वर कहलाते हैं। इस में प्राणों की साधना इस तौर से की जाती है कि मूल द्वार से प्राणों को चढ़ाते हैं और बीच के चक्रों को बेध कर छठे चक्र में पहुँचा कर चिदाकाश में, जो छठे चक्र के ऊपर है, लय करते हैं। यह अभ्यास बहुत कठिन है और इसके संयम भी बहुत कठिन हैं और ज़रा सी बद-परहेज़ी और भूल-चूक में, ख़ौफ़ सख़्त बीमारी या मर जाने का है। पिछले वक़्त में बहुत कम ऐसे लोग हुए कि उनसे यह साधन बन पड़ा हो। पर हाल के वक़्त में ज़ाहिरा कोई बिरला होगा कि जिससे यह अभ्यास थोड़ा सा बनता होगा, नहीं तो चार-छः महीने या एक वर्ष कुछ साधना करके इस योग के अभ्यासी या तो बीमार हो जाते हैं या ख़ौफ़ के मारे और ना-कामयाबी के सबब से छोड़ देते हैं ॥

२—इस अभ्यास में त्याग, वैराग और पुरुषार्थ पर ज़्यादा जोर दिया है और मालिक के चरणों की भक्ति और

प्रेम की मुख्यता नहीं है। जिस किसी से यह अभ्यास पूरा-पूरा बन आया तो वह सहसदलकँवल में पहुँच कर रह गया या उसके नीचे चैतन्य आकाश में लय हो गया। और यह मक़ाम वह है कि जहाँ से संतों का अभ्यास शुरू होता है। और इसके ऊपर सात मक़ाम तै करके सच्चे मालिक के धाम यानी राधास्वामी पद में पहुँचना होता है। फिर योगी और योगेश्वरों को सच्चे मालिक़ का भेद और पता नहीं मिला और न उनको सच्चे उद्धार का दर्जा हासिल हुआ।

३—अब समझना चाहिए कि जब कि चारों युगों में प्राणायाम की मुख्यता रही, और बग़ैर इस अभ्यास के, ब्रह्मपद भी किसी को (सिवाय उन बिरले शख़्सों के जिन से यह अभ्यास पूरा-पूरा बन आया) प्राप्त नहीं हुआ, तो ज़ाहिर है कि योग-मत के ब-मूजिब, किसी को भी, और ख़ास कर गृहस्थियों को उसका सिद्धांत हासिल नहीं हुआ, और सब जीव आवागवन के चक्र में रहे और किसी का भी कल्याण नहीं हुआ, और संतों के पद की, जो कि उनके सिद्धान्त पद के सात दर्जे ऊपर है और वग़ैर जहां पहुँचने के सच्चा उद्धार किसी का नहीं हो सकता है, किसी को ख़बर भी नहीं हुई, और न सुरत-शब्द का हाल कि जिस से कुल्ल रचना प्रकट हुई और जारी है, किसी को अब तक मालूम पड़ा। फिर योगी और योगेश्वर और आम लोग संतों की और उनके अभ्यास की महिमा कैसे जान सकते हैं ?

(७) ध्यान

१—ध्यान करने वालों की तीन क़िस्में हैं—पहले, जो मालिक को अरूप समझ कर और आकाशवत व्यापक मानकर ध्यान करते हैं। इन का ध्यान बे-ठिकाने है और ये चैतन्य आकाश का ख़्याल या अनुमान करके ध्यान करते हैं और जो रोशनी अंतर में नज़र आवे, उसी को आत्मा का दर्शन समझ कर तृप्त हो जाते हैं। दूसरे, जो मूर्ति या निशान का ध्यान करते हैं। इनका भी ध्यान बे-ठिकाने है और उनको उस मूर्ति का दर्शन भी बहुत कम होता है, और जो कभी हो गया तो जैसी मूर्ति देखी है, उसी के मुवाफ़िक़। वह मूर्ति न तो कभी बोलती है और न चलती है। तीसरे, वे जो गुरु स्वरूप का ध्यान करते हैं। इनको अक्सर दर्शन भी होते हैं और प्रीति भी किसी क़दर बढ़ती है, पर इनका भी ध्यान बे-ठिकाने है, इस सबब से इनकी भी तरक़्क़ी नहीं होती है॥

२—इन सब ध्यानियों का ख़्याल बाहर के आकाश में या अंतर में हृदय यानी मन के आकाश में जमता है और वहीं का चमत्कार देख कर ये लोग तृप्त हो जाते हैं। ऐसा ध्यान सख़्ती और तक़लीफ़ के वक़्त में बहुत कम काम देता है, सो अपनी इस बात की ये लोग परख नहीं करते। मालूम होवे कि मन-आकाश जीव के देह छोड़ने से पहले सिमट कर ऊपर को खिंच जाता है। फिर उस वक़्त ध्यान नहीं बन सकता और किसी क़दर बेहोशी ग़ालिब होती जाती है। और इसी तरह ज़्यादा तकलीफ़

और बीमारी के वक़्त भी, ब-सबब बे-आरामी और चंचलता मन के, यह ध्यान बहुत कम बन सकता है ॥

३—खुलासा यह कि इन सब को न तो सच्चे मालिक की ख़बर हुई और न अपने इष्ट के असली रूप और मक़ाम का हाल मालूम हुआ और न इस सबब से इनको कुछ तरक़्क़ी हासिल होती है और न घाट बदलता है और न ये मन और माया के घेर से बाहर जाते हैं। ये लोग अपनी करनी का फल किसी क़दर इस लोक में और कुछ परलोक यानी स्वर्ग वग़ैरा में भोगते हैं, यानी इन को थोड़ा-बहुत सुख और आनन्द मिलता है, पर जन्म-मरण के चक्र से ये नहीं बच सकते हैं। और जो सुख और आनन्द उनको प्राप्त होता है, वह भी थोड़ी देर ठहरने वाला है, पर अहंकार अपने अभ्यास का बहुत बढ़ जाता है ॥

४—संतों ने जो ध्यान बताया है, उसके साथ ध्येय का (यानी जिसका ध्यान किया जाता है) स्वरूप (चाहे रूपवान है या अरूप) और धाम और रास्ता अंतर में और उसके चलने की जुगत का भेद भी समझाते हैं। इस तरह ध्यानी अभ्यासी की सुरत दिन-दिन रास्ता तै करती हुई ऊँचे को चढ़ती जाती है और आनन्द भी बढ़ता जाता है और तन, मन और इन्द्रियों के घाट से अभ्यासी आहिस्ता-आहिस्ता न्यारा होता जाता है और अपने ध्येय यानी इष्ट और मालिक का, जो घट-घट में मौजूद है, जब-तब दर्शन करके निहायत मगन होता है। और उसकी मेहर और दया और रक्षा अपने अंतर में परख कर अभ्यासी की प्रीति और

प्रतीत दिन-दिन ज़्यादा होती जाती है। और जिस क़दर आनन्द उसको ऊँचे से ऊँचे देश का प्राप्त होता जाता है, उसी क़दर संसार और उसके भोग-बिलास और पदार्थों से आप ही आप उसकी तबियत हटती जाती है यानी सहज वैराग की दशा आती जाती है। और ऐसे अभ्यासी का, आहिस्ता-आहिस्ता मन और माया के घेर से निकल कर संतों के निज देश में जो अमर-अजर है, प्राप्त होना मुमकिन है। और वहाँ पहुँच कर अभ्यासी भी अमर हो जाता है और वहाँ का सुख और आनन्द भी अमर है, और काल-क्लेश वहाँ बिल्कुल नहीं है। इस तरह सच्चा उद्धार और सच्ची मुक्ति हासिल हो सकती है॥

(८) अभ्यास मुद्रा का

१—अक्सर योगी लोग यह अभ्यास करते हैं और कोई-कोई गृहस्थी भी इस अभ्यास में शामिल हैं। मुद्राऐं पाँच हैं:—(१) चाचरी (२) भूचरी (३) खेचरी (४) अगोचरी और (५) उनमुनी॥

२—पहिली दो मुद्राओं में दृष्टि का साधन, अंतर और बाहर किया जाता है। बाहर कोई स्याह नुक़ते पर, कोई चिराग़ की लौ पर अर कोई नाक की नोक या परों पर नज़र को जमाते हैं और अंतर में दोनों भवों के मध्य में ठहराते हैं। इस अभ्यास में रोशन सफ़ेद या रंगन नज़र आती है और उसके देखने से तबियत को कुछ रस आता है। और बहुतेरे इसी को आत्मा का प्रकाश समझ कर तृप्त हो गये। किसी-किसी को अपना रूप दिखलाई देता है

और ऐसे लोग उसी में अटक गये। इससे आगे का भेद और रास्ता किसी को मालूम नहीं हुआ। यह रोशनी मायक है और हमेशा यकसाँ क़ायम नहीं रहती है। इस सबब से इसके अभ्यासी किसी ठिकाने पर नहीं पहुँचे हैं और न उनका सच्चा उद्धार हुआ। इस करनी का फल थाड़ा सुख और आनन्द अभ्यास के वक़्त हासिल हो गया और बाक़ी सुख ऊँचे लोक या ऊँची योनियों में पावेंगे। और जिन्होंने यह अभ्यास सच्चे मालिक से मिलने की सच्ची चाह लेकर शुरू किया है, तो ऐसों को संत सतगुरु मिलेंगे और सच्चे मालिक और उसके धाम का भेद और युक्ति चलने की बतला कर और अपनी मेहर और दया से अभ्यास करवा कर धुर घर में पहुँचावेंगे। तब सच्चा उद्धार हो जावेगा॥

३—खेचरी मुद्रा का अभ्यास यह है कि ज़बान के सिरे को उल्टा कर तालू के द्वारे पर जमाते हैं और वहाँ जो अमृत की बूंदें हर वक़्त टपकती रहती हैं, उनको पान करके मगन और तृप्त हो जाते हैं और आगे की खोज कुछ नहीं करते हैं।

यह अभ्यास बहुत थोड़े आदमी करते हैं और जो कि यह देह के संग है, इस सबब से मरने के वक़्त बहुत कम मदद और फ़ायदा देता है, यानी सुरत या रूह के खिंचाव के वक़्त जाता रहता है।

४—अगोचरी मुद्रा के अभ्यासी शब्द की धुन को, जो अंतर में हर वक़्त हो रही है, सुनते हैं। कोई आधी

रात के बाद, बग़ैर कान बन्द करने के, और कोई कानों में कूंचियाँ और रुई लगा कर और कोई उँगली से कानों को बन्द करके और बाज़े मुंह और नाक को भी बन्द करते हैं। यह शब्द मजमूये (मिलौनी) का हर वक़्त नीचे के पर्दे में हो रहा है और जो कोई इसको चित्त देकर सुने तो तरह-तरह की आवाज़ें ख़ास कर वे दस आवाज़ें जो कि योग शास्त्र में लिखी हैं, सुनाई देती हैं। और उनमें जब मन और चित्त एकाग्र होकर लग जाते हैं तो रस और आनन्द भी आता है और संसार की तरफ़ से किसी क़दर तवज्जह भी हट जाती है। पर इस मुद्रा की साधना करने वालों को यह ख़बर नहीं कि कौन शब्द कहाँ से आता है, और न वे शब्द की धुन के साथ अपने मन और सुरत को चढ़ाते हैं। इस सबब से इनका अभ्यास भी पिंड का है और जब मरते वक़्त सुरत या रूह का खिंचाव होता है, तो उस वक़्त यह मजमूये (मिलौनी) का शब्द भी जाता रहता है, और ऐसे अभ्यासियों को, कर्म अनुसार, फिर देह धरनी पड़ती है, यानी जन्म-मरण नहीं छूटता और जीव का कल्याण नहीं होता। जो ऐसे अभ्यासियों के मन में आगे की खोज की चाह पैदा हो जावे या मालिक के भेद को दरियाफ़्त करने का शौक़ मन में आ जावे, तो इन को भी संत सतगुरु का दर्शन प्राप्त होना, और उनकी दया के वसीले से सच्चे उद्धार का हासिल होना, संतों के अभ्यास की कमाई से, मुमकिन है। और नहीं तो अपनी करनी का फल कुछ

इस जन्म में और आइन्दा दूसरे जन्म में, जो पहिले से बेहतर और उमदा होगा, भोग करेंगे। पर ये आवागवन से रहित नहीं होंगे और न ऊँचे देश में पहुँच सकेंगे ॥

५—उनमुनी मुद्रा का अभ्यास यह है कि जब अगोचरी मुद्रा करके अभ्यासी के मन और चित्त ठहर जावें और शब्द के रस में इस क़दर रसीले हो जावें कि तन, मन और शब्द की भी सुध न रहे, तो वह हालत समाधि की कहलाती है और इसी को उनमुनी मुद्रा कहते हैं। ऐसी समाधि जितनी देर तक रहे, वह उनमुनी अवस्था कहलाती है। इस हालत में अभ्यासी के मन और चित्त चिदाकाश में लय हो जाते हैं। यह दर्जा मुद्राओं के अभ्यास में बड़ा है, और ये लोग इसी को आतम आनन्द और आत्मा में लय होना मानते हैं। संत मत के मुआफ़िक़ ये लोग भी पिंड के नाके पर रह गये और ब्रह्मांड और संतों का देश उसके ऊपर रहा। इस सबब से इनको भी सच्चे मालिक का खोज और पता न लगा, और न सच्चे उद्धार की गति प्राप्त हुई। ऐसे अभ्यासी मरने के बाद कुछ अर्से तक आतम पद में रह कर फिर देह धरेंगे, पर ऊँचे लोक और ऊँची योनि में, और पहिले जन्म की निस्बत विशेष सुख पावेंगे, मिस्ल राज भोग वग़ैरा, क्योंकि इन मुद्राओं के अभ्यासियों के मन में वासना माया के भोग और मान, बड़ाई और प्रभुता की धरी रहती है। जब तक कि जीव को संत सतगुरु का संग न मिलेगा और उनकी जुगत की कमाई करके, वह माया के घेर के बाहर न जावेगा, तब तक उसकी वासना

दूर न होवेगी। इसी सबब से उस का जन्म-मरण बराबर जारी रहेगा।

(९) वाचक ज्ञान

१—यह मत इस ज़माने में कसरत से जारी है। और इसकी असल यह है कि सच्चे ज्ञानी, जो योग अभ्यास कर के ब्रह्मपद में पहुँचे और जो उन्होंने सिद्धांत के बचन कहे या अपनी बानी में लिखे, उन को पढ़ कर ये लोग मगन होकर अपने तईं ब्रह्म रूप मानने लगे और जो अभ्यास कि सच्चे ज्ञानियों ने बतलाया, उसकी कुछ कार्रवाई इन्होंने नहीं की। इस सबब से इनके मन और इन्द्रियाँ, जैसे दुनियादारों के ज़बर हैं और संसार के भोग-विलास की चाहों से भरे हुए हैं, ऐसे ही बने रहे, क्योंकि उन पर अभ्यास का रगड़ा नहीं लगा और न सफ़ाई हासिल हुई। सिर्फ़ ऊँची अवस्था की बातें सुन कर और याद करके हर एक को सुनाते हैं, और अपने आप को ब्रह्म रूप मान कर समझते हैं कि उनको कुछ करनी और करतूत की ज़रूरत नहीं रही। इस तरह की बातें समझकर सीख लेना तो बहुत आसान है, पर मन और इन्द्रियों का रोकना और मारना बहुत कठिन काम है। सो मेहनत करना और मन को मोड़ना तो कोई पसन्द नहीं करता, सहज में बे-तकलीफ़ ब्रह्म बन जाना हर एक को मंज़ूर है। इस तरह बहुतेरे भेष और पन्डित और गृहस्थी, जिनको थोड़ी-बहुत विद्या हासिल हुई, इस मत में शामिल हो गये और ज्ञान की बातें बनाने लगे। पर, बर्ताव और रहनी उनकी संसारियों

के मुवाफ़िक़ ही रहता है और ये लोग मन और इन्द्रियों की तरंगों में बहते रहते हैं और अपने हाल से बिल्कुल बे-ख़बर हैं। और जो कोई उनको उनकी कसरें जतावे, तो उस से लड़ने और मुक़ाबिला करने को तैयार होते हैं, यानी उन पर इस क़दर ग़फ़लत और मूर्खता छाई हुई है कि यह भी नहीं समझते कि हम कहते क्या हैं और करते क्या हैं ? प्रथम तो यह लोग कसरत से अभ्यास से ख़ाली हैं और जो कोई कि कुछ अभ्यास करते हैं तो वह विचार का है, यानी थोड़ी देर एकाँत में बैठ कर ख़्याल करते हैं कि हम यह भी नहीं, वह भी नहीं, यानी जो रचना कि उनको नज़राई देती है या जो कुछ कि किताबों में पढ़ा है, उस को निषेद करके बाक़ी जो रहा, उसको अपना रूप यानी ब्रह्म समझ कर चुप हो रहते हैं। यह अभ्यास शुरू में कोई दिन इतना फ़ायदा दिखलाता है कि उनकी वृत्ति को सब तरफ़ से समेट कर एकाग्र कर देता है, और किसी-किसी को ऐसी हालत में कुछ प्रकाश भी नज़र आता है। लेकिन बाद थोड़े दिन के, यह अभ्यास दिन-दिन फीका और हलका होता जाता है और फिर वैसा सिमटाव और एकाग्रता भी नहीं होती। तब उस अभ्यास को भी छोड़ देते हैं और अपने तईं पूरा जान कर इधर-उधर मेले-तमाशे और देशों की सैर करते हुए मारे-मारे फिरते हैं। जो आत्म आनन्द इनको प्राप्त हुआ होता, तो इनका मन सैर और तमाशे की इच्छा न उठाता। पर इन्हांने भारी धोखा खाया और वृथा अपनी नर देह को बरबाद किया। इनका वही हाल होगा जो संसारियों का होगा, बल्कि ये उन से ज़्यादा तकलीफ़

और दुख भोगेंगे क्योंकि ये लोग ब्रह्म होने का दावा करके, मन और इन्द्रियों की तरंगों में बे-ख़ौफ़ बर्तते हैं, और किसी का डर और लज्जा नहीं करते हैं। और यही हाल थोड़ा-बहुत सूफ़ियों का है जो कि बग़ैर किसी क़िस्म के अभ्यास के, अपने तईं सूफ़ी मान बैठे हैं।

२—सच्चे ज्ञानी जो पहले वक़्त में हुए, उन्होंने योग अभ्यास और पाँचों उपासनाओं को (यानी गणेश और विष्णु और शिव और शक्ति और ब्रह्म की) करके और छः चक्रों को बेध कर सहसदलकँवल का दर्शन किया और किसी-किसी ने त्रिकुटी में पहुँच कर ओंकार पुरुष का दर्शन किया और वे उसके लक्ष्य रूप में, जिस को शुद्ध ब्रह्म कहते हैं, समाये और वहाँ पहुँच कर एकताई के बचन कहे। उन बचनों को थोड़ी सी विद्या और ओछे पात्रवाले पढ़-पढ़ कर फूल गये और सिद्धांती बन गये॥

३—सच्चे योगी ज्ञानियों ने अपनी बानी में प्रथम उपासना और योग अभ्यास की रीति वर्णन की और साफ़-साफ़ लिख दिया कि जिस में यह चार साधन नहीं आये हैं—(यानी) १—वैराग, २—विवेक, ३—षट सम्पत्ति और ४—मुमोक्षता) वह अधिकारी सिद्धान्त के बचन पढ़ने, सुनने और मानने का नहीं है, और जो यह हुक्म न मानेगा, उसका वह हाल होगा कि जो राहु-केतु असुर का हुआ जो कि रूप बदल कर देवताओं की सभा में जा बैठा और अमृत पान करने में शामिल हुआ और उसका यह फल पाया कि सिर काट कर दो टुकड़े किये गये, यानी जो

कोई मन और इन्द्रियों को बग़ैर क़ाबू में लाने के सिद्धांत के बचन पढ़ेगा या कहेगा तो वह अपना अकाज करेगा ॥

४—आज-कल के ज्ञानी अपने तईं विद्यावान कहते हैं और हाल यह है कि विद्या भी पूरी-पूरी उनको नहीं हासिल है और अमल यानी अभ्यास का तो कुछ ज़िक्र भी नहीं। ब्रह्म को सर्व व्यापक मान कर कहते कि आना-जाना कुछ नहीं, और जो कि ज्ञान के बचन पोथियों में लिखे हुए उनकी समझ में आ गये, इससे उनको उपासना करने की कुछ ज़रूरत नहीं रही, और ऐसे ही अपने मन में आप मान लेते हैं कि चारों साधन भी उनमें आ गये। और जो कोई उनसे दरियाफ़्त करे कि कौन साधन करके तुमको ज्ञान प्राप्त हुआ, तो जबाव नहीं दे सकते और नाराज़ होकर झगड़ा करने को तैयार होते हैं। ऐसे लोगों के संग से, सब को, जो अपने जीव का कल्याण चाहें, बचना चाहिए, और उपासना यानी भक्ति और योग-अभ्यास करके प्रथम अपने अंतर की सफ़ाई हासिल करना चाहिए। तब पहिले उपास्य यानी मालिक का दर्शन पावेंगे और फिर उसकी दया से उसके लक्ष्य स्वरूप का दर्शन मिलेगा, और तन, मन और इन्द्रियों से न्यारे होकर मालिक के चरणों का प्रेम-रस पावेंगे। उस वक़्त चारों साधन भी सर्व-अंग करके दुरुस्त हो जावेंगे और सच्चे ज्ञान का दर्जा हासिल होगा। इसका नाम ज्ञान है और जिसको कि वाचक ज्ञानी ज्ञान समझ रहे हैं, वह पोथियां का यानी विद्या ज्ञान है, साक्षात ज्ञान नहीं है।

(१०) ग्रंथ और पोथी का पाठ करना, और मन से मालिक की स्तुति गाना और प्रार्थना करना

१—जो लोग सिर्फ़ इतने ही काम को, परमार्थ की करनी समझ कर, कर रहे हैं और अंतर के अभ्यास से बे-ख़बर हैं, वे विद्यावानों में दाखिल हैं। जिस वक़्त कि ये काम करते हैं, उस वक़्त उनके मन का अंग थोड़ा-बहुत परमार्थी हो जाता है और स्तुति और प्रार्थना करने के वक़्त किसी क़दर चित्त गद्गद हो कर उसमें प्रेम भी आ जाता है और अपनी बुद्धि और समझ-बूझ के मुवाफ़िक़ अपने मन और इन्द्रियों की चाल को भी किसी क़दर दुरुस्त रखते हैं। पर न तो वह प्रेम ठहर सकता है और न उसकी तरक़्क़ी हो सकती है, और ज़्यादा तकलीफ़ और ज़्यादा सुख के वक़्त या किसी क़िस्म की उपाधि की हालत में वह समझ-बूझ उनकी क़ायम नहीं रहती है और न कुछ परमार्थी मदद दे सकती है॥

२—जो इन में से किसी के मन में खोज पैदा हो जावे या दुनिया के बहुत दुख पाकर सच्चे सुख की तलाश की चाह मन में आ जावे तो उसका संत सतगुरु या साध गुरु या संतों के सतसंगी से मेल हो जाना मुमकिन है और फिर उसके वसीले और मदद से जीव का कारज बन सकता है॥

३—और जो इनके मन में संसार की चाह यानी मान-

बड़ाई और भोगों की ख़्वाहिश ज़बर रही तो इनका परमार्थ इसी क़दर रहा, और प्रीति प्रतीत भी अपने इष्ट के चरणों में मामूली तौर पर, जैसे और बाहरमुखी पूजा करने वालों की होती है, रहेगी। इस क़दर परमार्थ से जन्म-मरण और देहियों से सम्बन्धी कष्ट और क्लेश से, छुटकारा नहीं हो सकता है। ये लोग बारम्बार देह धरेंगे और अपनी करनी का फल और दुख-सुख भोगते रहेंगे। सच्चे मालिक और उसके धाम का पता और भेद और सच्चे उद्धार का तरीक़ा इनको भी मालूम नहीं हुआ॥

ख़ुलासा

१—इस बचन में जो कुछ कि कार्रवाइयाँ लिखी गई हैं, सब परमार्थ के हासिल करने के वास्ते या तो संयम हैं, या थोड़ी-बहुत चढ़ाई के अभ्यास हैं। हरचन्द कि इनमें पूरा-पूरा काम नहीं बन सकता, यानी सच्चा और पूरा उद्धार और सच्चे मालिक की प्राप्ति नहीं हो सकती, फिर भी थोड़ा-बहुत सुख इस लोक में और स्वर्ग आदिक में मिल सकता है, और किसी-किसी अभ्यास से सुरत और मन की कुछ ऊँचे मक़ाम तक पिंड और ब्रह्मांड में चढ़ाई भी मुमकिन है॥

२—इस बचन में जहाँ ज़िक्र मूर्ति और निशानों की पूजा का किया गया है, उससे मतलब यह है कि चाहे मूर्ति होवे या तसवीर, ग्रन्थ होवे या पलंग और खड़ाऊँ, या किसी मत के आचार्य का मक़ाम ख़ास या कोई उनके निशान, या उनके बर्तने की चीज़ें और सामान होवे,

या भक्तों और औलिया और महात्माओं और परमार्थी लोगों की कोई जगह ख़ास मुक़र्रर की हुई, या उनके नाम से कोई मकान बने हुए, या जहाँ कि उन्होंने कोई दिन रह कर अभ्यास और सतसंग किया होवे, या उनकी समाध और मक़बरे होवें और जहाँ कि लोग किसी वक़्त मुक़र्ररह पर जमा होकर पूजा, नज़र, भेंट या सतसंग करते होवें ॥

३—और जहाँ कि इस बचन में नाम तीर्थ का आया है उससे मतलब यह है कि चाहे उन मक़ामों में से, जिनका ऊपर ज़िक्र किया गया, कोई स्थान होवे, या कोई दरिया या झील कुँड या कुँवा या बावड़ी जिस को लोगों ने ब-सबब ठहरने उस जगह महात्माओं के, पवित्र और बुज़ुर्ग माना होवे और जहाँ कि वक़्त मुक़र्ररह पर लोग वास्ते स्नान, ध्यान, पूजन और देने नज़र और भेंट, और पुण्य-दान करने के, अपने परमार्थी फ़ायदे या किसी संसारी मतलब और मुराद हासिल होने की नज़र से जमा होते होवें।

४—इस जगह पर इस क़दर जताना ज़रूर मालूम होता है कि जिस जगह पर चाहे कोई स्थान ऊपर ज़िक्र किये गए मक़ामों में से होवे और लोग इस इरादे और मतलब से जमा होवें कि वहाँ किसी पिछले संत या साध या महात्मा या वली या भक्त के भजन, अभ्यास और सतसंग करने की जगह है और वह, ब-सबब उनके वहाँ ठहरने के, निहायत पवित्र और पाक है, और ज़रूर वहाँ

पर खोज और पता और भेद तरीक़े का, कि जिसकी कमाई करके उन महात्माओं को बड़े से बड़ा दर्जा हासिल हुआ, उनके गद्दी-नशीन या सतसंगियों से जो वहाँ उस वक़्त मौजूद होवें, मिल सकता है और वहाँ पहुँच कर वे उन महात्माओं के निशान पर भाव और अदब की नज़र से हाल-फूल चढ़ावें और वहाँ जो साधू रहते हैं, उनके खाने-पीने के ख़र्च के वास्ते नज़र भेंट करें या उनके लिए तोहफ़े वग़ैरा ले जावें और भाव के साथ उस मक़ाम पर या किसी निशान के सनमुख अदब (जैसे मत्था टेकना और सिजदा करना) बजा लावें, और वहाँ ठहर कर सतसंग करें और भेद ऊँचे दर्जों और परमार्थ का और जुगत और अभ्यास उनके प्राप्ति की, दरियाफ़्त करें, और जब-तब वास्ते इज़हार करने हाल अपने अभ्यास के, और दरियाफ़्त करने ज़्यादा भेद, और तरकीब दूर करने विघ्नों के, जो हालत अभ्यास में वाक़ै होते हैं, आना-जाना जारी रक्खें तो यह कार्रवाई मूर्ति और निशान की पूजा में दाख़िल नहीं हो सकती, क्योंकि जहाँ-तहाँ ऐसे स्थानों पर सतसंग और अंतर का अभ्यास जारी है, वहाँ जो लोग परमार्थी फ़ायदा हासिल करने के लिए जमा होंगे, वे किसी सूरत में बाहर की कार्रवाई में नहीं अटकने पावेंगे और न वहाँ बाहर की कार्रवाई का कुछ उपदेश जारी होगा। वहाँ जो कुछ कि ज़ाहिरी भाव और अदब के क़ायदे बरते जाते हैं, वे, ब-सबब मुहब्बत महात्माओं के, और ख़्याल उनकी बुज़ुर्गी के, बर्ताव में आते

हैं, न कि स्थान या निशान की पूजा, और उसी को मालिक समझ कर और उसका इष्ट बाँध कर पूजा में दाख़िल हो सकते हैं। और जहाँ कहीं कि सतसंग और उन महात्माओं का चलाया हुआ तरीक़ा अंतर अभ्यास का, वास्ते प्राप्ति आला दर्जे के परमार्थ के, जारी नहीं है और न कोई वहाँ किसी दर्जे के अभ्यासी रहते हैं, तो जिस क़दर कार्रवाई, भाव और अदब वग़ैरा की, वहाँ जारी है, वह कर्म और भ्रम में दाख़िल होगी। और उस कार्रवाई से जीवों के न तो संशय और भ्रम दूर होंगे और न आला दर्जे के परमार्थ हासिल करने का तरीक़ा मालूम होगा। जिस क़दर कि तन, मन, धन वहाँ पर लोग जमा होकर लगावेंगे, उसका फल थोड़ा-बहुत सुख इस लोक में या स्वर्ग आदिक में, जैसे कि और शुभ कर्मों का फल मिलता है, पावेंगे ॥

बचन उन्नीसवाँ

संत मत में ज़ाहिरी यानी बाहरमुख कार्रवाई

संत अथवा राधास्वामी मत में जो जो अभ्यास कि जारी हैं, उनकी कार्रवाई अन्तर में ऊँचे घाट पर होती है और बाहर, सिवाय सतसंग और सेवा और आरती के, कोई कार्रवाई नहीं होती और इनका हाल मुफ़स्सल नीचे लिखा जाता है ॥

१—पहिले, "सतसंग"। यह संत सतगुरु या साध

गुरू या अभ्यासी और प्रेमी सतसंगी के संग का नाम है। इसमें सच्चे मालिक, सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल का निर्णय, और उन की और संत सतगुरु की महिमा और उनके चरणों में दीनता और प्रेम और प्रतीत पैदा करने और बढ़ाने का ज़िक्र होता है और संत सतगुरु की बानी का पाठ और सच्चे मत यानी राधास्वामी मत का निरूपण और सच्चे मालिक और उससे मिलने के सच्चे रास्ते और जुगत का भेद और अभ्यास की तरकीब और उसकी बड़ाई और उसका फल और असर, जैसा कुछ कि अभ्यासी को वक़्त पर मालूम होता जाता है, वर्णन किया जाता है, और संसार का हर वक़्त बदलने वाला हाल और उसके भोगों और पदार्थों का नाशमान होना समझा कर उसमें वाजिबी और ज़रूरी तौर पर बर्तने की हिदायत की जाती है। ऐसे सतसंग की ज़रूरत हर एक सच्चे परमार्थी यानी सच्चे मालिक के प्रेमी को ज़्यादा से ज़्यादा है, क्योंकि बिना उसके, भ्रम और संशय दूर नहीं होते और पुरानी, रसमी, और क़ौमी और संसारी चाल और व्यवहार, जिसका मन वर्षों से आदी हो रहा है और जो सच्चे परमार्थ में विघ्न डालते हैं, नहीं छूट सकते, और सच्चे मालिक की मौजूदगी का सच्चा यक़ीन दिल में नहीं आ सकता, और न सच्ची प्रीति मन में पैदा होती है, और न वह जैसा चाहिए, दिन-दिन बढ़ती है, और न अभ्यास सुरत-शब्द योग का दुरुस्ती से बन सकता है और न उसकी तरक़्क़ी हो सकती है।

२—दूसरे, "सेवा"। इसकी तीन क़िस्में हैं। पहिले, मन की सेवा—और वह यह है कि बाहर में सतसंग और दर्शन, और अंतर में सुमिरन और ध्यान करना, प्रीति और प्रतीत के साथ। दूसरे, तन की सेवा और यह हाथ-पाँव की कार्रवाई है जैसे चरण दबाना, पंखा करना, पानी लाना, खाना पकाना, हाथ धुलाना, फ़र्श बिछाना, झाड़ू लगाना, और जो काम जिस वक़्त मुनासिब मालूम होवे। तीसरे, धन की सेवा और वह यह है कि जिस क़दर जिससे अपनी ताक़त के मुवाफ़िक़ हो सके, प्रशाद और भोग रखना, साधुओं का भंडारा करना, ग़रीबों और मोहताजों के लिए मालिक के नाम पर खाना और कपड़ा देना, साधों और सतसंगियों के लिए बाग़ लगाना और मकान बनवाना॥

३—पहिली सेवा सब परमार्थियों को ज़रूर चाहिए। दूसरी सेवा उन लोगों के वास्ते ख़ास कर मुक़र्रर हुई है जिनका मन सतसंग और ध्यान और भजन में कम लगता है पर सेवा करके प्रीति और प्रतीत उनकी बढ़ती जावेगी और दिन-दिन सतसंग और अभ्यास में प्यार और शौक़ बढ़ता जावेगा। और यही सेवा उन अभ्यासियों के वास्ते भी है कि जिनके मन और सुरत भजन में ज़्यादा लगते हैं और प्रेम और उमंग उनकी ज़्यादा होती जाती है कि उस उमंग में उनका मन आप ही आप थोड़ी-बहुत सेवा करने को चाहता है और निहायत दीनता के साथ ऐसी सेवा, अन्य सेवकों से माँग कर करने लगते हैं। और इस में फ़ायदा यह है कि उनके अंग २ में प्रेम धस जाता है

और जब-जब कि सुरत उनकी ऊपर को विशेष चढ़ जाती है, तब ऐसी सेवा करके उसकी धार नीचे को, यानी देह में, उतर कर उनके हाथ-पैरों को जो किसी क़दर कसरत भजन से सुन्न यानी सुस्त पड़ जाते हैं, ताक़त और चालाकी देती है। तीसरी, सेवा उनके वास्ते है जिनके पास थोड़ा या बहुत धन हैं और इससे उनकी प्रीति और प्रतीत भी ज़ाहिर होती है और उसकी तरक़्क़ी भी होती है, क्योंकि जब उनको सच्ची प्रीति और प्रतीत मालिक और गुरू के चरणों में आई, तब मुमकिन नहीं कि उन से कोई सेवा तन, मन और धन की बाक़ी रह जावे। और दुनिया में भी जहाँ कि आपस में मुहब्बत होती है, वहाँ बहुत ख़ुशी के साथ धन ख़र्च किया जाता है और तन की सेवा भी उमंग के साथ करते हैं। फिर परमार्थ में जहाँ कि सच्ची प्रीति का कारख़ाना है, सच्चे प्रेमी और सच्चे प्रतीत वाले के मन में निहायत दर्जे की उमंग, वास्ते करने इन सेवाओं के, उठती है और जिस क़दर ऐसी सेवायें उससे बनती जाती हैं, उसी क़दर रस परमार्थ का, अंतर और बाहर, उस सेवक को ज़्यादा से ज़्यादा मिलता जाता है॥

४—ये तीनों क़िस्मों की सेवायें सब मतों में जारी हैं। और सबब इनके जारी होने का यह है कि दुनिया में सब जीव तन, मन और धन में बँधे हुए हैं। और इन्हीं की प्रीति हर एक के मन में धरी हुई है। और जब कोई परमार्थ में आया, तब संत और महात्मा चाहते हैं कि उस के मन में मालिक की प्रीति ज़बर पैदा होवे, तब उसका सच्चा उद्धार

मुमकिन होगा यानी तन, मन और धन की प्रीति आहि-स्ता-आहिस्ता सतसंग और अभ्यास करके हलकी होती जावेगी और उसकी जगह मालिक और गुरू की प्रीति पैदा होकर दिन-दिन बढ़ती जावेगी। जब ऐसी सूरत हुई, तब वह परमार्थी, जैसे कि दुनिया की प्रीति की जगह बहुत ख़ुशी के साथ तन, मन और धन की सेवा करता है यानी अपने दोस्त और अज़ीज़ के वास्ते तन, मन और धन मगन होकर ख़र्च करता है, इसी तरह, जब कि उसको सच्चे मालिक की प्रतीत आई और प्रेम मन में जागा, तब वह गुरू और साध और प्रेमी सतसंगी की हर तरह से सेवा करने को, उमंग के साथ, अन्तर से चाहता है, और जब ऐसी सेवा बन पड़ती है, तब उसको निहायत ख़ुशी और ताज़गी होती है और जब तक सेवा न बने, तब तक मन उस का उदास और सुस्त रहता है। इस वास्ते यह सब सेवायें निशान और सुबूत इस बात के हैं कि सेवा करने वाले के मन में सच्ची प्रीति और प्रतीत मालिक के चरणों में आई और उसने गुरू और साध और सतसंगियों को मालिक का प्यारा समझा और उनके साथ बिरादराना मुहब्बत करने लगा। नहीं तो अपने मन के शौक़ पूरा करने को और भोगों के रस लेने के लिए और अपनी स्त्री और लड़के-वाले की ख़ातिर और बिरादरी के राज़ी और ख़ुश रखने के लिए सब कोई तन, मन और धन लगा रहे हैं और फल उसका सिवाय संसारी ख़ुशी और मन और इन्द्रियों के हुक्म में चलने और बिरादरी को राज़ी रखने के, और कुछ नहीं मिल सकता है। और परमार्थी को ऐसी

सेवायें करने से सच्चे मालिक की प्रसन्नता और रज़ा-मन्दी हासिल होती है और उसका फल यह होता है कि दिन-दिन उसकी प्रीति और प्रतीत चरणों में बढ़ती जाती है, और अन्तर में भजन और ध्यान का रस दिन-दिन ज़्यादा मिलता जाता है, और सब तरह से सच्चे मालिक की दया, हर काम में, अंतर और बाहर, अपने ऊपर निरख और परख कर मन ही मन में मगन होता है और भरोसा मालिक के चरणों में मज़बूत होता जाता है ॥

५—तीसरे "आरती"। यह तरकीब ध्यान की है कि सन्मुख गुरू या साध के बैठ कर और दृष्टि से दृष्टि जोड़ कर अंतर में मन और सुरत को खींचकर ऊपर को चढ़ाया जाता है। सब अभ्यासी हर रोज़ यही अभ्यास आँखें बन्द करके अपने अंतर में करते हैं। पर कभी-कभी सन्मुख गुरू या साध के बैठ कर करने में मदद मिलती है और मन और इन्द्रियां निश्चल हो जाते हैं और खिंचाव और चढ़ाई भी हर एक की ताक़त के मुवाफ़िक आसानी से होती है। इस सबब से रस और आनन्द विशेष आता है और इसी तरह चन्द मर्तवा अभ्यास करने से ताक़त बढ़ती है। आरती के वक़्त रोशनी यानी जोति जगाई जाती है, इस मतलब से कि अक्सर यह काम रात के वक़्त किया जाता है कि दर्शन अच्छी तरह से होवें और कुछ प्रशाद भी, बतौर भोग, सन्मुख रक्खा जाता है कि बाद आरती के वह सतसंगियों और साधुओं में तक़सीम हो जाता है और अपनी श्रद्धा और उमंग के

मुवाफ़िक़ कभी-कभी पोशाक और नक़द भी भेंट किया जाता है, और वक़्त आरती के, प्रेम अंग वाले और आरती के शब्दों का लहजे और स्वर के साथ पाठ किया जाता है और सब सतसंगी और साधू आरती करने वाले के मुवाफ़िक़ पाठ को चित्त से सुन कर, अपने-अपने अंतर में ध्यान करते हैं, पर सन्मुख वही शख़्स बैठता है जो आरती करता है। जो शब्द कि गाया जाता है, उसके मतलब और अंतरी मक़ामों पर नज़र रख कर, अन्तर में ध्यान और चढ़ाई की जाती है। यह काम हर रोज़ नहीं बन सकता है, पर जैसा जिसका शौक़ होवे, उस के मुवाफ़िक़ कभी-कभी या महीने या हफ़्ते में एक या दो दफ़ा उसकी कार्रवाई होती है॥

६—सिवाय ऊपर की लिखी कार्रवाई के, चार काम और हैं जो वास्ते परमार्थी फ़ायदे सच्चे प्रेमियों के, संत-मत में बाहर की कार्रवाई में शामिल किये गये हैं और थोड़े-बहुत हर एक मत में जारी हैं। इस जगह उनकी तफ़सील, मय उनके फ़ायदे के लिखी जाती है, जिस से सब सतसंगियों को उनके जारी होने का सबब और फ़ायदा मालूम हो जावे और मन में भ्रम और संशय पैदा न होवें। और वे चार काम ये हैं—पहिले, गुरू और साध के चरणों पर मत्था टेकना या चरण छूना। दूसरे, हार या फूल चढ़ाना। तीसरे, प्रशादी लेना। और चौथे, चरणामृत लेना। अब हर एक का बयान जुदा-जुदा किया जाता है।

(१)-गुरु और साध के चरणों पर मत्था टेकना या चरण छूना

७—इस कार्रवाई से मतलब यह है कि गुरू और साध की दया हासिल होवे और चरणों को स्पर्श करके यानी छू कर वह शीतल रूहानी धार जोकि हर वक़्त उनके चरणों से निकलती रहती है, प्रेमी परमार्थी की रूह यानी सुरत और देह में असर करे। अब मालूम होवे कि हर एक शख़्स की कुल्ल देह से, और ख़ास कर हाथ और पैर से, हर वक़्त चैतन्य धार, रोशनी रूप, निकलती रहती है। जो संसारी और दुनियादार लोग हैं और ख़ास कर वे, जो नशे की चीज़ें खाते-पीते रहते हैं और मांस आहार भी करते हैं, उनकी धार, उनकी रहनी और खान-पान के मुवाफ़िक़, बहुत नीचे के दर्जे की, अथवा ब-निस्बत संत और साध की धार के, जिनकी सुरत ऊँचे के देश की बासी है, बहुत मैली और कम रोशनी वाली होती है, और संत और साध की धार निहायत निर्मल और चैतन्य और रोशन होती है। यह धार, वक़्त छूने उनके चरणों के, हाथ या माथे से, फौरन छूने वाले के बदन में समा जाती है और उसकी रूह यानी सुरत में ऊपर के देश की तरफ़ झुकाव और संत चरण में प्रीति पैदा करती है। हर मुल्क और हर क़ौम के लोगों में, जहाँ-जहाँ आपस में प्रीति या रिश्तेदारी है, यह दस्तूर जारी है कि चाहे मर्द होवें या औरतें, जब-जब आपस में मिलते हैं तो किसी न किसी तरह से एक दूसरे के बदन को छूते हैं, जैसे किसी क़ौम में छाती

से लगा कर मुलाक़ात करते हैं या हाथ या पाँव छूते हैं और किसी क़ौम में सिर्फ़ हाथ मिलाते हैं और ज़्यादा प्यार और मुहब्बत की हालत में मुँह या हाथ पाँव चूमते हैं। ग़रज़ इससे साफ़ यह मालूम होती है कि जहाँ अदब या प्यार या मुहब्बत दिलों में है, वहाँ ज़रूर वग़ैर छूने एक दूसरे की देह के, मन को चैन नहीं आता है। और इस छूने से एक की चैतन्य धार दूसरे की चैतन्य धार से मिल जाती है, क्योंकि असल में सब मनुष्यों का स्वरूप चैतन्य धार है जो ब-राह रगों के तमाम बदन और अंग-अंग में फैली हुई है, और प्यार और मुहब्बत और अदब का जोश और असर उसी धार में है। सो वह धार जब तक कि दूसरे की धार से किसी क़दर न मिले, अपने प्यार या मुहब्बत या अदब का फ़ायदा यानी रस और आनन्द नहीं हासिल कर सकती है। इस वास्ते सब देशों में और सब क़ौमों में कोई न कोई चाल इस क़िस्म की जारी है कि जिससे यह मतलब हासिल होवे। फिर संत सतगुरु या साधगुरू के चरणों के स्पर्श से, कि जिनकी देह से निहायत ऊँचे दर्जे की चैतन्य की धार हर वक़्त जारी है, किस क़दर फ़ायदा, अलावा उनकी दया ख़ास के, यानी रस और आनन्द हासिल होना, मुमकिन है ? इस वास्ते हर एक शख़्स को चाहिये कि जब कहीं ऐसे महात्मा मिलें, ज़रूर अपना परमार्थी और संसारी भाग बढ़ाने के वास्ते उनके चरणों में मत्था टेकें या उनके चरणों को भाव और प्रेम के साथ सिर झुका कर छुयें ॥

(२)–हार और फूल चढ़ाना

८—यह कार्रवाई भी भाव और प्यार और अदब के साथ संत सतगुरु और साध और महात्मा के सन्मुख की जाती है। और मतलब उसका यह है कि उसकी दया प्राप्त होवे और उनकी निर्मल चैतन्य धार जो कि ऐन अमी रूप है और हर वक़्त उनकी देह से, जैसा कि ऊपर लिखा गया है, निकलती रहती है, फूलों में समा कर, जब कि वह हार फूल प्रशादी के तौर से लिए जावें, सेवक के अंग में उसका असर पैदा होवे यानी वह निर्मल धार सेवक के चैतन्य की धार से मिल कर उस के मुख का ऊँचे की तरफ़ को झुकाव करे।

(३)–प्रशादी लेना

९—यह कार्रवाई दो तरह से होती है। एक तो यह कि जब संत सतगुरु या साध या कोई महात्मा भोजन पावें और जो कुछ उनका उच्छिष्ट यानी खाने से बाक़ी रहे, उसको उन के सेवक या इष्ट वाले, प्रशाद समझ कर आपस में तक़सीम करके खावें, या जो प्रशाद वग़ैरा उनके भोग लगाने के पहिले तक़सीम होवे, उसको हर एक शख़्स उनसे प्रशादी करा लेवे यानी वे उस चीज़ पर अपना लब लगा देवें, और तब वह पवित्र, और सेवकों के पाने के लायक़ समझी जावे।

ज़ाहिर है कि हर एक मनुष्य और जानवर के लब में असर है। कितनी ही छोटी बीमारियों को सिर्फ़ बीमार के अपने लब के लगाने से आराम हो जाता है। और कुत्ते अपनी चोट और जख़्म को अपनी ज़बान से चाट कर दुरुस्त कर लेते हैं। और कोई-कोई आदमियों के फोड़े या ज़ख़्म दूसरे आदमी के लब लगाने और उनका मवाद चूस कर निकाल देने से अच्छे हो जाते हैं। असल यह है कि हर एक जानदार की ज़बान पर चैतन्य की धार जो कि अमी रूप है, जारी रहती है, और उसी में यह असर फोड़े और जख़्म और दूसरी बीमारी के अच्छे करने का है, और उसी धार के सबब से आदमी को रस और स्वाद खाने-पीने का आता है। तो जब कि आम आदमियों और जानवरों की ज़बान और उसके लुआब में इस क़दर असर है, तो फिर संत और साध और दूसरे महात्माओं के लुआब की क्या तारीफ़ की जावे? और उस का असर किस क़दर असर वाला होगा? उनकी धार बहुत ऊँचे देश से और निहायत निर्मल, अमी रूप, आती है और वह सिर्फ़ देह की ही नहीं बल्कि रूह यानी सुरत और मन को पवित्र करने वाली और ताज़गी बख़्शने वाली है। जब कि कोई खाने की चीज़ उसके मुख से लगे तो वह निहायत पवित्र और निर्मल चैतन्य की धार से असर लेकर निहायत रसीली हो गई, तो बड़े भाग्य हैं उन लोगों के कि जिनको ऐसी ख़ास पवित्र प्रशादी मिले। इसके पाने से सच्चे और प्रेमी परमार्थी की प्रीति और प्रतीत सच्चे मालिक और गुरू के चरणों में

दिन-दिन बढ़ती जावेगी और अंतर में सफ़ाई हासिल होती जावेगी। और मालूम होवे कि जहाँ कहीं आपस में मनुष्यों की संसारी मुहब्बत गहरी है, वहाँ ज़रूर वे अक्सर एक साथ खाते-पीते हैं और बहुत ख़ुशी से एक दूसरे को झूंठन पाते हैं। तो जब कि संसारी प्रीति में इस क़दर तबियत मायल हो जाती है कि एक दूसरे की छुई हुई या झूंठी चीज़ से परहेज़ नहीं रहता, तो संत और साध और महात्मा की प्रशादी, जब कि उनको गुरू धारण किया, किस क़दर प्रीति और सफ़ाई और उमंग के साथ माँग कर लेना चाहिये? संसारी कार्रवाई में आपस में साथ खाने या एक दूसरे की झूंठन पाने से संसारी मुहब्बत मज़बूत होती है और कपट दूर हो जाता है और संत या साध या महात्मा की प्रशादी लेने से मालिक के चरणों में प्रीति और प्रतीत मज़बूत होकर दया और मेहर प्राप्त होती है कि जिससे दुनिया में भी रक्षा और मरने के बाद जीव का कारज दुरुस्त बनता है॥

(४)–चरणामृत लेना

१०—यह कार्रवाई भी उसी मुवाफ़िक़ समझना चाहिये जैसा कि प्रशादी के निस्बत बयान हो चुका है। और यह भी कि संत और साध और गुरू के चरणों में भाव और भक्ति और दीनता का निशान है। अब मालूम

होवे कि संत और साध और महात्माओं की सब देह, और ख़ास कर उनके अंगूठों और उंगलियों से हर वक़्त निर्मल चैतन्य की धार अमी रूप जारी रहती है और इसी तरह सब जीवों की देह और उंगलियों से भी धार जारी रहती है। पर संत और साध की धार बहुत ऊँचे देश से आती है और महा निर्मल और अमी रूप और रोशन चैतन्य है, मगर आम जीवों की धार, ब-निस्बत उनकी धार के, मलीन और कसीफ़ यानी स्थूल चैतन्य की धार है। इस सबब से परमार्थी लोग वास्ते प्राप्ति मेहर और दया और होने सफ़ाई अंतर के, पुराने वक़्तों से, गुरू और साध के चरणों को दूध या जल से धोकर उस जल या दूध को चरणामृत समझ कर पान करते आये हैं। और अब भी सब जगह सब मतों में थोड़ी या बहुत यह चाल किसी न किसी सूरत या तौर से जारी है॥

११—यहाँ इस बात का बयान करना ज़रूर है कि पानी फ़ौरन चैतन्य की धार को जज़्ब कर लेता है यानी अपने में समा लेता है। इस सबब से जल का इस्तेमाल कसरत से, वास्ते इस काम के, मंदिरों में और संत और साध और गुरू की संगत में जारी है। हर एक तारघर में जहाँ तार की ख़बरें आती जाती हैं, एक सिरा तार का हमेशा कुए में पानी में डूबा रहता है, इस मतलब से कि जब बिजली चमके तो उसकी धार उस तार के वसीले से पानी में समा जावे। और जो ऐसा न किया जावे तो वह बिजली की धार तारघर को या उस आदमी को, जो

तार का काम करता है, जला देवे। कहीं कहीं तार का सिरा बजाय पानी के, ज़मीन में गाड़ दिया जाता है, और उससे भी यही मतलब हासिल होता है क्योंकि ज़मीन भी बिजली की धार को अपने में समा लेती है। ऐसे ही अक्सर लोग दूर ले जाने के वास्ते चरणामृत को मिट्टी में मिला लेते हैं और उसको थोड़ा-थोड़ा करके अरसे तक काम में लेते हैं ॥

बचन बीसवाँ

नेत्र के स्थान से सुरत को अन्तर में चढ़ाना ही सच्चा मार्ग उद्धार का है

१—हर एक आदमी को, चाहे मर्द होवे या औरत, जो दुनिया के हाल को ग़ौर से देखता है और जो कुछ कि हालतें जीवों पर गुज़रती रहती हैं, विचार के साथ उन पर नज़र करता है, तो उसको थोड़े से सोच और विचार से मालूम होगा कि इस दुनिया में कोई चीज़ ठहराऊ नहीं है और यहाँ थोड़े दिनों का वास है। और इस थोड़े दिनों के आराम पाने और ज़रूरी चाहों के पूरा करने के लिए सब जीव सुबह से शाम तक मेहनत और मशक़्क़त करते हैं। और इस आराम के हासिल करने के लिए तरह-तरह की तकलीफ़ें और कर्मों का भार अपने सिर पर उठाते हैं। और अब अपनी ज़रूरत के मुवाफ़िक़ सामान मिल जाता

है, तब लालच बढ़ाकर तरह-तरह के फ़िज़ूल सामान और इन्द्रियों के भोगों के हासिल करने के लिए कोशिश करते हैं, और अपने आप को चिन्ता और फ़िक्र और रंज में डालते हैं, और बहुत सी जगहों और चीज़ों में बे-फ़ायदा मुहब्बत और बंधन पैदा करते हैं। और फिर नतीजा यानी फल उसका यह होता है कि थोड़ा-बहुत इस क़िस्म का सामान इकट्ठा करके और कुछ उसका भोग और रस लेकर सब का सब सामान मरने के वक़्त यहीं छोड़ कर चले जाते हैं ॥

२—विचारवान आदमी ऐसे हाल को ग़ौर से देखकर, ज़रूर अपने मन में यह ख़्याल करेगा कि जैसे इस दुनिया में हर एक चीज़ में ऊँचे से ऊँचे और नीचे से नीचे दर्जे हैं, इसी तरह कुल रचना में भी ज़रूर दर्जे होंगे, यानी इस लोक से और बढ़कर लोक ज़रूर ऊँचे दर्जे में होंगे, और वहाँ मेहनत और तकलीफ़ कम, और सुख और आराम ज़्यादा, और ठहराव भी ज़्यादा होगा। और इसी तरह कोई ऐसा भी दर्जा होगा और उस में लोक भी ऐसे होंगे कि जहाँ का सुख और आनन्द बहुत भारी और हमेशा का क़ायम रहनेवाला हो, और जीव भी वहाँ हमेशा रहकर उस आनन्द का रस लेता रहे, क्योंकि इस दुनिया में भुनगे से लगा कर आदमी तक, कितने ही दर्जे नज़र आते हैं, और हर एक ऊँचे दर्जे में ठहराव और सुख ज़्यादा से ज़्यादा होता जाता है, और आसमान पर तारा-मंडल और चाँद

और सूरज की रचना निहायत लतीफ़ और निहायत देर तक क़ायम रहने वाली नज़र आती है ॥

३—ऐसा विचारवान आदमी अपनी हालतों को भी, जो हर रोज़ उसके ऊपर गुज़रती हैं, ग़ौर से ख़याल करेगा और उनसे वे नतीजे, जो आगे लिखे जाते हैं, निकालेगा ॥

(क)—पहली हालत जाग्रत की कि जिस में यह आदमी इन्द्रियों के स्थान पर, ख़ास कर आँखों के तिल में, बैठ कर दुनिया की कार्रवाई करता है और जो सामान कि ब्रह्म और माया ने भोगों की क़िस्म से रचे हैं, उनका रस लेता है और देह के और दुनिया के दुख-सुख भोगता है ॥

(ख)—दूसरी हालत स्वप्न की यानी जब कि आदमी सोते में ख़्वाब देखता हैं। इस हालत में रूह यानी सुरत की धार इन्द्रियों और ख़ास कर आँख के स्थान से अन्दर की तरफ़ खिंच जाती है। और उस वक़्त देह और दुनिया और कुटुम्ब-परिवार और माया के पदार्थ और सामान और उनके दुख-सुख की, जो कि हालत जाग्रत में सताते हैं, बिल्कुल ख़बर नहीं रहती। और इस हालत का स्थान देह के अन्दर दूसरा है, और जिस देह से कि इस हालत में सुरत यानी रूह सुपने में बर्तावा करती है, वह भी दूसरे यानी सूक्ष्म या लतीफ़ है ॥

(ग)—तीसरी हालत सुषुप्ति यानी गहरी नींद की, जिस में सुरत यानी रूह को दोनों देहियों और उनकी हालतों से बिल्कुल बे-ख़बरी हो जाती है, यानी स्थूल देह जिससे जाग्रत की हालत में कार्रवाई होती है और सूक्ष्म

देह जिससे सुपने की हालत में कार्रवाई होती है, दोनों भूल जाती हैं और उनके दुख-सुख का भी असर वहाँ नहीं पहुँचता है ॥

४—इन तीनों हालतों की कैफ़ियत को विचार करने से यह बात साफ़ मालूम होती है कि यह तीनों देहियाँ (यानी स्थूल, सूक्ष्म और कारण) रूह यानी सुरत का स्वरूप नहीं हैं, बल्कि यह देहियाँ खोल या ग़िलाफ़ मुवाफ़िक़ मकान के हैं, जिन में बैठ कर रूह यानी सुरत उनके औज़ारों यानी इन्द्रियों के वसीले से इस दुनिया में और स्वप्न देश में कार्रवाई करती है, और सुषुप्ति के देश में कुल्ल कार्रवाई इस क़िस्म की बन्द हो जाती है और जिस क़दर कि दुनिया और देह के दुख-सुख हैं, वह उसी हालत और उसी देह के संग करने से सुरत यानी रूह को व्यापते हैं। और जब वह हाल और उसकी देह बदल जाती है, तब उन दुक्खों और सुक्खों का असर सुरत यानी रूह पर बिल्कुल नहीं पहुँचता ॥

५—इस नतीजे से यह बात साफ़ ज़ाहिर होती है कि सुरत यानी रूह एक जुदी वस्तु यानी चीज़ है और देह जुदी चीज़ है, और सुरत को देहियों का संग करने और उनके औज़ारों यानी इन्द्रियों के वसीले से बाहर की रचना के पदार्थों का रस लेने और उन में मन को बाँधने और लगाने से दुख-सुख भोगना पड़ता है ॥

६—जो सुरत इस तरफ़ से यानी मन और इन्द्रियों और देहियों और भोगों की तरफ़ से चित को हटा कर

अंतर में अपने निज रूप की तरफ़, जो सुषुप्ति अवस्था यानी गहरी नींद की हालत के, परे है और फिर उस निज रूप के भंडार की तरफ़ जो कि माया की हद के पार है और वही सच्चे मालिक और सर्व रचना के पिता का धाम है, शौक़ के साथ तवज्जह करे, तो उसको अपने निज रूप का आनन्द और सुख हासिल होने लगे, और दुनिया और देह के दुख-सुख से निवृत्ति यानी अलेहदगी, जिसका मुक्ति कहते हैं, फ़ौरन हासिल होती हुई मालूम होने लगे ॥

७—सुरत यानी रूह और उसका भंडार सर्व आनन्द और सर्व सुख और चैतन्य शक्ति का खज़ाना है और जब वह उसी की धारों से इन्द्रियों के स्थान पर आकर ठहरती है, हर एक इन्द्रिय के भोग का रस मालूम होता है और जो वह धार न आवे तो कुछ मज़ा या रस या स्वाद मालूम नहीं हो सकता है ॥

८—यह बात, हालत स्वप्न के, विचारने से अच्छी तरह साबित हो सकती है, क्योंकि उस हालत में रूह यानी सुरत सब इन्द्रियों की कार्रवाई, उसी तौर पर जैसे कि जाग्रत अवस्था में करती है, ब-दस्तूर करती है, और उसी तरह का आनन्द और स्वाद हर एक इन्द्रिय की कार्रवाई में मालूम होता है जैसे कि हालत जाग्रत में। तो इससे साफ़ ज़ाहिर होता है कि यह सब रस और सुख और आनन्द रूह यानी सुरत की धार में हैं। और बाहर के पदार्थ सिर्फ़ एक वसीला उस धार के इन्द्रिय के

मक़ाम पर अन्दर से खींच कर लाने का है, यानी आदमी के अन्तर में सब रस और स्वाद और आनन्द हर तरह का और ताक़त उसके भोगने की मौजूद है।

९—विचारवान आदमी इन सब ऊपर की लिखी हुई बातों से, यानी दुनिया के हाल और अपनी हालतों को ग़ौर के साथ नज़र करने से आप समझ सकता है और उनसे यह नतीजा निकाल सकता है कि जो कोई पूर्ण आनन्द और पूर्ण सुख के भंडार में पहुँचना चाहे, उसको मुनासिब है कि भेद लेकर अपने अंतर में तवज्जह करे, और चलने की युक्ति दरियाफ़्त करके आँख के मक़ाम से, जहाँ कि इस सुरत की ख़ास बैठक जाग्रत की हालत में है, चलना शुरू करे, तो एक दिन अपने निज रूप का दर्शन कर सकता है और वहाँ से निज भंडार में, जहाँ से कि सब रूहें यानी सुरतें आई हैं, पहुँच कर परम आनन्द को प्राप्त हो सकता है॥

१०—मालूम होवे कि बे-शुमार रूहें इस लोक में आई हैं और इसी तरह हर लोक में कसरत से मौजूद हैं। फिर ज़रूर हुआ कि कोई भंडार ख़ास है कि जहाँ से ये आती हैं, क्योंकि हर एक देह यानी ज़िस्म में, चाहे वह ज़मीनी है, चाहे आसमानी, एक एक सुरत मौजूद है और उसकी ताक़त से उस देह यानी जिस्म की कुल्ल कार्रवाई जारी रहती है, और जब वह रूह उस देह को छोड़ देती है, उसी वक़्त वह देह बेकार होकर थोड़े अर्से में नेस्त-ओ-नाबूद (नाश) हो जाती है॥

११—रूह यानी सुरत के निज रूह और स्थान का हाल इस देह में, और भी उसके भंडार यानी कुल मालिक के मक़ाम का भेद और रास्ते का हाल और उसके तय करने की तरकीब सिर्फ़ राधास्वामी यानी संत मत में तफ़सील के साथ लिखी है। और मतों में इस हाल का बयान साफ़ तौर पर और तफ़सील के साथ नहीं पाया जाता है, क्योंकि जो यह हाल साफ़-साफ़ लिखा होता तो जितने मत कि दुनिया में जारी हैं, उनके मानने वाले सिर्फ़ पोथियाँ पढ़ने और पढ़ाने और बाहरी पूजा और रस्मों में अटके न रहते, और ज़रूर उनमें से थोड़े-बहुत, खोज करके, अंतर के अभ्यास में लगते, और वहाँ का रस पाकर अपने अपने मत वालों को जो बाहरमुखी पूजादि में भ्रम रहे हैं, समझा-बुझा कर उसी काम में लगाते, और हर एक अभ्यासी इस तरह अपनी सच्ची मुक्ति होती हुई अपने में आप परख कर थोड़ी बहुत शान्ति को प्राप्त होता ॥

१२—इस वास्ते मुनासिब और ज़रूर मालूम होता है कि हर एक आदमी, चाहे मर्द हो या औरत, इस दुनिया के नाशमान और अख़ीर में तकलीफ़ देने वाले सुखों का भरोसा न करके, उनकी चाह सिर्फ़ ज़रूरत के मुवाफ़िक़ उठावे, और सच्चे और पूर्ण और हमेशा क़ायम रहने वाले सुखों और आनन्द के हासिल करने के वास्ते और देह के संगी दुख-सुख और जन्म-मरण की तकलीफ़ात से बचने के लिये, जिस क़दर आराम और आसानी के साथ

कोशिश बन पड़े, हर रोज़ करे। और इस काम के करने के वास्ते, मुवाफ़िक उपदेश राधास्वामी मत के, यह ज़रूर नहीं है कि कोई आदमी अपना घर-बार और कुटुम्ब-परिवार और उद्यम और रोज़गार को छोड़ दे। सिर्फ़ इतना दरकार है कि फ़िज़ूल चाहें संसार के भोग-बिलास और नामवरी की छोड़कर, प्रेम और उमंग के साथ, थोड़ा-बहुत अभ्यास उस आसान युक्ति का, जो राधास्वामी दयाल ने अब ज़ारी फ़रमाई है और जिसमें किसी क़िस्म का ख़ौफ़ और ख़तरा नहीं है, हर रोज़ एक घंटा या दो घंटे या ज़्यादा, दो दफ़े या तीन दफ़े करे, तो उसका फ़ायदा अभ्यासी को थोड़े दिनों में अपने अंतर में दिखाई देगा, और फिर उसका शौक़ सच्चे मालिक की दया से अंतर में परिचय पाकर दिन-दिन बढ़ता जावेगा, और इस तरकीब से एक दिन निज धाम में पहुँच कर सच्चे मालिक राधास्वामी का दर्शन मिल जावेगा।

१३—और जो कोई सच्चे मालिक की खोज अपने घट में नहीं करेगा और सुरत-शब्द योग की युक्ति को, वास्ते हासिल होने दर्शन सच्चे मालिक के और पहुँचने धुर धाम के, दरियाफ़्त करके उसकी कमाई नहीं करेगा और सिर्फ़ मज़हबी किताबों के पढ़ने और बाहर की पूजा और परमार्थी रस्मों में अटका रहेगा कि जिनका सिल-सिला रूह की धार के साथ अंतर में नहीं लगा हुआ है, तो उसको सच्ची मुक्ति कभी नहीं हासिल होगी, और न वह जन्म-मरण के चक्कर और माया का हद से बाहर

जावेगा । ऐसा जीव इसी लोक में या और ऊँचे-नीचे लोकों में जन्म पाकर सुख-दुख भोगता रहेगा, और यह उत्तम नर देही जिसमें सच्चे परमार्थ की कमाई हो सकती है, मुफ़्त बरबाद जावेगी और आख़ीर वक़्त पर अफ़सोस और पछतावा कुछ फ़ायदा न देवेगा । इस वास्ते हर एक आदमी को जो अपने नफ़े और नुक़सान की तमीज़ कर सकता है, मुनासिब है कि जहाँ दुनिया के सब काम करता है और रोज़गार के लिये सख़्त मेहनत उठाता है, अपने जीव के कल्याण के लिए भी कुछ थोड़ी-बहुत कार्रवाई दो घंटे, तीन घंटे हर रोज़, बिला नाग़ा किया करे । इस में उसका और उसके परिवार का फ़ायदा इस दुनिया में, और बाद मरने के, परलोक में होगा, और बहुत सी तक़लीफ़ों और दुखों से, राधास्वामी दयाल की कृपा से, सहज में उसका बचाव हो जावेगा ॥

———

बचन इक्कीसवाँ

सब जीवों को सुरत-शब्द अभ्यास का, वास्ते कल्याण और उद्धार अपने जीव के, करना चाहिये

१—सब लोग हर रोज़ नौ द्वार के वार बर्त रहे हैं, यानी (दो आँखों के, दो कानों के, दो नाक के, एक मुँह, एक पेशाब और एक पाख़ाने का) कुल्ल नौ द्वारे जो पिंड में हैं, इन में होकर सुरत की धार दुनिया के अनेक तरह

के भोगों और पदार्थों में बर्तावा कर रही है, और एक एक द्वार का रस और मज़ा जो हासिल होता है, उसी में सब जीवों का निहायत दर्जे का बंधन हो रहा है।

२—सब इन्द्रियों का पूरा-पूरा भोग तो किसी बिरले जीव को, जैसे महाराजों के महाराजा को हासिल होगा, पर कुछ इन्द्रियों का भोग तो, थोड़ा-बहुत, हर एक जीव को अपनी-अपनी ताक़त और सामान के मुवाफ़िक़ हासिल है। और उस में इस क़दर आसक्ति यानी बंधन मन का हो रहा है कि बग़ैर उसके, जीव अपनी ज़िन्दगी मुश्किल समझता है और उसके छोड़ने में अपने जीव की हानि देखता है॥

३—सुरत की बैठक तीसरे तिल में है जो दोनों आँखों के मध्य के मुक़ाबिल, अंदर की तरफ़ है। और उसी स्थान से सब इन्द्रियों का सूत लगा हुआ है। और उसी स्थान से (जो सहस दल कँवल के नीचे है) सुरत की धारें सब इन्द्रियों में और कुल देह के अंग-अंग में जारी हुई हैं। गोया सुरत, जो कि सूरज के मुवाफ़िक़ है, अपनी किरणियों यानी धारों से देह में व्यापक हो रही है और अपनी धारों से अंग-अंग को चैतन्य कर रही है॥

४—जब कि सुरत की एक धार में, जो कि एक एक इन्द्रिय के स्थान पर आकर कार्रवाई करती है, इस क़दर रस और आनन्द है कि कोई कोई आदमी सिर्फ़ एक एक इन्द्रिय के रस और मज़े के शौक़ में अपनी जान और माल सब दे देते हैं, जैसे शराबी या अफ़यूनी

और चटोरे, खाने-पीने और नशे के शौक़ वाले, ज़बान इन्द्रिय के वश होकर अपना धन और तन उसके नज़र कर देते हैं और तमाशबीन यानी वेश्यागामी आदमी काम इन्द्रिय के वश होकर अपनी जान और माल उस काम में खर्च कर देता है और अपने अज़ीज़ और रिश्तेदार और बिरादरी की मुहब्बत और शर्म और ख़ौफ़ सब छोड़ देता है, तो रूह यानी सुरत की धार में जो ऊँचे मुक़ाम यानी दसवें द्वार से पिंड में आती है (और जो अपने मक़ाम पर बैठ कर और अनेक धार होकर मिस्ल हज़ारे-फ़व्वारे के तमाम बदन में फैली है) किस क़दर रस और आनन्द होना चाहिये ? यानी उस धार को, कुल रस और मज़ा और आनन्द का (जो पिंड में इन्द्रियों के वसीले से हासिल हो सकता है) भंडार क्यों नहीं समझना चाहिये ।

५—अक़लमंद आदमी जो इस बात को ग़ौर से समझे, वह फ़ौरन यह नतीजा निकाल सकता है कि जब कि सर्व रस और मज़े और आनन्द सुरत की धारों में हैं और वे सब मज़े और रस और आनन्द, अन्तर में, हर एक जीव के मौजूद हैं, जैसा कि स्वप्न अवस्था के हाल को विचार करके मालूम हो सकता है, तो फिर हर एक जीव को चाहिये कि जहाँ तक हो सके, अपने अन्तर में उन मजों और रसों को आसानी से हासिल करने की युक्ति दरियाफ़्त करके, थोड़ी-बहुत उसकी कमाई शुरू कर देवे, तो आहिस्ता-आहिस्ता ज़रूर एक रोज़ उस स्थान पर

पहुँचना मुमकिन है, जहाँ कि सुरत की नशिस्त (बैठक) है और जहाँ पहुँच कर उस सुरत की धार से (जो सब धारों का, जो इन्द्रियों के द्वारों से जारी होती हैं, ख़ज़ाना है) मिल कर उसका आनन्द (जिस में सर्व इन्द्रियों के मज़े शामिल हैं) ले सकता है ॥

६—यह बात कुछ नई और ज़्यादा मुश्किल मालूम नहीं होती, क्योंकि बहुत से आदमी सिर्फ़ चार-पाँच इन्द्रियों के रस और स्वाद के हासिल करने के लिये रात-दिन मेहनत करते हैं, और फिर भी वे रस पूरे-पूरे जैसा कि मन चाहता है, हासिल नहीं होते। और इन रसों के हासिल करने के लिये उनकी सुरत की धार चार-पाँच द्वारों पर बैठ कर अपनी ताक़त को बाहरमुख भोगों में ख़र्च करती है। और जिन को सर्व इन्द्रियों के रस हासिल हैं, उनकी सुरत की धार का बर्ताव नौ द्वारों में हर रोज़ रहता है, यानी इन द्वारों के वसीले से बाहर की तरफ़ दुनिया के भोगों और सामान में वे धारें रोज़मर्रा बहती रहती हैं यानी ख़र्च होती रहती हैं। फिर दसवें दार की तरफ़ चलने के लिये, जो अन्दर दिमाग़ यानी सिर के गुप्त है और जहाँ से शब्द की धार, रूह यानी सुरत के स्थान तक, और वहाँ से नीचे की तरफ़, हर वक़्त जारी है और तमाम बदन को चैतन्य और ताज़ा करती रहती है, किस क़दर तवज्जह हर एक आदमी को करना ज़रूर और मुनासिब मालूम होता है ? जो इस क़दर मेहनत न बने, जैसे कि दुनिया के भोगों के हासिल करने के लिये हर कोई कर रहा है, तो

थोड़ी सी मेहनत यानी दो-तीन घंटे अभ्यास हर रोज़ करना, अपनी रूह यानी जीव के फ़ायदे और कल्याण के वास्ते ज़रूरी, बल्कि फ़र्ज़ मालूम होता है ॥

७—यह सच है कि अन्तर का मज़ा और रस सुरत-शब्द योग के वसीले से ऐसी जल्दी नहीं मालूम होता, जैसा कि बाहर के भोगों का रस फ़ौरन इन्द्रियों के वसीले से मिलता है। और इसका सबब यह है कि इन्द्रियों की कार्रवाई करते हुए जीव को जन्मान जन्म और हाल के जन्म में सालहा साल गुज़र गये हैं जबकि अन्तरमुख शब्द की कमाई हाल में ही शुरू की हैं। फिर कैसे दोनों अभ्यासों का फल बराबर जल्द मिले ? सिवाय इसके, इस काम में, यानी अभ्यास में, बहुत थोड़ा वक़्त लगाया जाता है और उस में से भी बहुत सा वक़्त गुनावन यानी ख़्यालात दुनियावी में गुज़र जाता है, और थोड़े से थोड़ा वक़्त ख़ालिस अभ्यास में (ख़र्च) होता है। फिर किस तरह ऐसा जल्दी असर और फ़ायदा अंतरमुख कमाई का सहा मालूम पड़े ? इस वास्ते शौक़ीन को मुनासिब है कि जिस क़दर बन सके रोज़ाना अभ्यास, जिस क़दर दुरुस्ती के साथ बने, करता रहे, और जो रस और आनन्द आला दर्जे का अंतर में न मालूम पड़े तो अपनी हालत को परख करके देखे कि अभ्यास से पहले किस क़दर उसके मन का बंधन संसार और उसके पदार्थों में था, और बाद गुज़रने कुछ अर्से, जैसे एक दो वर्ष के, किस क़दर प्यार और भाव उसका दुनिया और उसके पदार्थों में कम हुआ,

और किस क़दर प्रीति और प्रतीत उसकी, सच्चे मालिक और गुरू के चरणों में बढ़ी, और किस क़दर उसका भजन और सतसंग में चाव और प्यार बढ़ा ॥

८—जो इस तरह अपनी हालत की परख करने से मालूम पड़े कि संसार और संसारियों की तरफ़ से तबियत किसी क़दर दिन-दिन हटती जाती है और अन्तर अभ्यास में और सतसंग और बानी के पाठ में ज़्यादा लगती जाती है, और इधर का रस ज़्यादा आनन्द देता है और संसार के भोग दिन-दिन किसी क़दर फीके लगते मालूम होते हैं, तो यही सबूत इस बात का है कि अंतर का रस भारी और पायदार है और बाहर भोगों का रस हलका और फीका और नाशमान है। फिर मुनासिब है कि जिस क़दर बने, इसी अभ्यास को आहिस्ता-आहिस्ता बढ़ाता जावे और संसार की मुहब्बत आहिस्ता-आहिस्ता कम करता जावे, तो रफ़्ता-रफ़्ता एक दिन काम दुरुस्त बन जावेगा और इसी अभ्यास से एक दिन सच्ची मुक्ति और परम आनंद प्राप्त हो जावेगा ॥

९—मालूम होवे कि ऊपर जो कुछ लिखा है, यह सच्चे अभ्यास का हाल है, यानी जिसके दिल में निर्मल चाह सच्चे मालिक से मिलने और अपने जीव के कल्याण करने की है और कोई दूसरी ख़्वाहिश सिद्धि शक्ति की या मान-बड़ाई हासिल करने की नहीं है, और संसार के भोगों की फ़िज़ूल चाह जिसने सचौटी के साथ दूरी करी है, या कम करता जाता है, उसी की हालत अभ्यास करके

आहिस्ता-आहिस्ता बदलती जावेगी और बुरे कामों से नफ़रत और नेक कामों में रग़बत होती जावेगी। और उसको अभ्यास की हालत में यह भी मालूम हो जावेगा कि इस जुक्ति की कमाई से तन, मन और इन्द्रियों से न्यारा होना मुमकिन है। और फिर वही जीव संतों के बचन की परीक्षा अपने अन्तर में ब-ख़ूबी करता जावेगा और दिन दिन राधास्वामी दयाल की मेहर और दया से, प्रीति और प्रतीति उनके चरणों में बढ़ाकर एक दिन अपना काम पूरा बना लेवेगा। और जो कोइ अपने मन और इन्द्रियों में आसक्त हैं और संसार के भोगों और पदार्थों का चाह किसी क़दर ज़बर रखते हैं और उसको दूर या कम नहीं कर सकते, उनकी हालत जल्द नहीं बदलेगी। पर जो वे सतसंग और अभ्यास करते रहेंगे तो अव्वल उनके अन्तर में सफ़ाई, और फिर आहिस्ता-आहिस्ता चढ़ाई होती जावेगी और फिर उनकी हालत भी बदलती जावेगी ॥

बचन बाईसवाँ

पुरुषार्थ और प्रारब्ध, यानी मौज अथवा तदबीर और तक़दीर

१—एक सतसंगी का प्रश्न है कि जीव पराधीन है या स्वाधीन, यानी जो कर्म यह चाहे, अपनी ताक़त से कर सकता है या कि जैसा प्रारब्ध में लिखा है, यानी जन्म के वक़्त जैसा लेख हो गया है, उसी के मुवाफ़िक़ यह अपनी उम्र भर में कार्रवाई करता है ?

जवाब इस प्रश्न का यह है कि जीवों की दो क़िस्में हैं– एक, प्रेमी परमार्थी, और दूसरे, संसारी यानी दुनियादार

२—प्रेमी परमार्थी जीवों का यह हाल है, जैसा कि इन कड़ियों में लिखा है—

विषयन से जो होय उदासा ।
परमारथ की जा मन आसा ॥
धन संतान प्रीति नहिं जाके ।
जक्त पदारथ चाह न ताके ॥
तन इन्द्री आसक्त न होई ।
नींद भूख आलस जिन खोई ॥
विरह बान जिन हृदय लागा ।
खोजत फिरे साध गुरु जागा ॥
साध फ़क़ीर मिले जो कोई ।
सेवा करे, करे दिलजोई ॥

३—ऐसी हालत जिस किसी की है, वह संसारी मुआमलों की तरफ़ तवज्जह कम रखता है, और इन मुआमलों में जो कुछ यत्न बन आवे और जैसा कुछ उसका फल होवे, उसको मालिक की मौज अपने वास्ते समझ कर उस पर राज़ी रहता है, और दुख-सुख और तक़लीफ़ की हालत में कभी अपने मालिक को नहीं भूलता है, और न कभी मालिक की शिकायत करता है । ऐसा जीव पूरी-पूरी शरण सच्चे मालिक राधास्वामी दयाल की लेकर अपनी तवज्जह परमार्थ के यत्न में लगाता है,

और सच्चे मालिक के दर्शन और प्रसन्नता की चाह सबसे ज़बर रखता है ॥

४—ऐसे जीवों का हिसाब अलेहदा है, यानी उनके वास्ते जो कुछ होता है और उन से जो कुछ कि बनता है, वह सब कुल-मालिक राधास्वामी दयाल की मौज से होता है। वह तो सच्ची शरण में आकर बाल समान अपने सच्चे माता-पिता राधास्वामी दयाल के आसरे और उनकी दया के भरोसे पर जीते हैं और सब अपने कारोबार और कुटुम्ब-परिवार को उनकी मौज के आसरे रखते हैं, यानी जैसे वे रक्खें, उसी में राज़ी रहते हैं, और दुनिया के दस्तूर के मुवाफ़िक़ थोड़ा-बहुत यत्न भी दुनिया के कामों में करते हैं, पर उस में भी राधास्वामी दयाल की मौज को अपनी चाह और ज़रूरत पर फ़ायक़ रखते हैं और कभी मौज से नाराज़ नहीं होते हैं ॥

५—ऐसे जीव, पुरुषार्थ का कुछ भरोसा नहीं रखते, सिर्फ़ अपने मालिक के हुक्म और मौज को सब कामों में मानते हैं और समझते हैं कि जो कुछ उनके और उनके कुटुम्ब और परिवार के वास्ते होता है, वह राधास्वामी दयाल माता-पिता के हुक्म से होता है। और माँ-बाप अपने बच्चों के वास्ते कभी कोई बात तकलीफ़ या नुक़सान की नहीं करेंगे, इस वास्ते जब कोई बात ज़ाहिर में नुक़सान या तकलीफ़ की पैदा होवे तो उस में भी मसलहत और अपना असली नफ़ा और फ़ायदा समझते हैं। जसे कि जब बालक के फोड़ा निकलता है, तो माता

बालक को अपनी गोद में लेकर डाक्टर से चीरा दिलवाती है। उस वक़्त ज़ाहिर में यह काम दुखदाई मालूम होता है, पर उसका फ़ायदा थोड़े अर्से में ज़ाहिर होगा, यानी फोड़े का दर्द दूर हो जावेगा और जल्द उसको आराम होवेगा ॥ दूसरे

संसारी जीव यानी दुनियादार

६—इन जीवों का अंतर में अपने सच्चे मालिक के हर वक़्त अंग-संग मौजूद होने और उसकी समरत्थता और दयालुता और हर-दम ख़बरगीरी करने का पूरा-पूरा निश्चय नहीं है। इस वास्ते वे अपने पुरुषार्थ यानी यत्न और तदबीर का आसरा और भरोसा रखते हैं और उसी में प्रवृत्त रहते हैं। सच्चे मालिक का भरोसा इनके दिल में नहीं आता है, और जो कोई ऐसा मानते हैं, उसको वे नादान और सुस्त और आलसी समझते हैं। इस सबब से ये जीव प्रारब्ध यानी मालिक की मौज या हुक्म को नहीं मानते, और अपने सब कामों की जवाब-देही यानी बोझ-भार अपने सिर पर लेते हैं। और जब कोई काम उनकी मरज़ी और चाह के मुवाफ़िक़ दुरुस्त बन जावे तब अपने पुरुषार्थ और बुद्धि की महिमा करते हैं, और जो उनकी चाह के मुवाफ़िक़ न बने तो किसी न किसी जीव को या अपनी समझ-बूझ या अपनी कार्रवाई को दोष लगावेंगे कि उसने फ़लानी बात हमारे कहने के मुवाफ़िक़ नहीं की, या कोई बात हम चूक या भूल गये, नहीं तो वह काम ज़रूर ऐसा बन जाता और जब कोई नुक़सान हो

जावे, तब भी दूसरे शख़्स को या बीमारी या हकीम और डाक्टर वग़ैरा या अपने भाग्य को दोष लगावेंगे। पर यह बहुत कम कहेंगे कि मालिक के हुक्म से ऐसा हुआ या उसकी मरज़ी ऐसी ही थी।

७—इस वास्ते, इन लोगों के वास्ते पुरुषार्थ यानी यत्न मुख्य है। इन से कभी प्रारब्ध या मालिक के हुक्म के आसरे निश्चल नहीं रहा जावेगा और जो कोई इनको ऐसी सलाह देगा, तो वे उसको धोका देने वाला, और अपना नुक़सान कराने वाला समझेंगे, और उसकी सलाह नहीं मानेंगे।

८—सिवाय इन दो क़िस्म के जीवों के एक तीसरी क़िस्म और भी है। और इस क़िस्म में वे जीव हैं कि जो परमार्थ में नये आये हैं और जिनको अभी पूरी प्रीति और प्रतीत सच्चे मालिक के चरणों में नहीं आई है, और जिनके दिल में अभी दुनिया के भोग-विलास की चाह बहुत ज़बर है, और परमार्थ की कमाई सिर्फ़ इस क़दर करना चाहते हैं कि जिस में उनके दुनिया के आराम और भोग-विलास में कमी या ख़लल (विघ्न) न पड़े और राधास्वामी दयाल की शरण भी सिर्फ़ इस क़दर ली है कि जिस में उन के जीव का अन्त-समय गुज़ारा हो जावे, यानी दुखों से और नर्कों की तकलीफ़ों से बचाव हो जावे और आहिस्ता-आहिस्ता एक दिन अपने निज घर में राधास्वामी दयाल और संत सतगुरु की कृपा से पहुंच जावें। पर इस काम में ऐसी जल्दी भी नहीं चाहते कि जिसमें उनके दुनिया के व्यवहार और

आराम में किसी तरह का नुक़सान या ख़लल पैदा होवे, बल्कि ऐसा चाहते हैं कि दुनिया की भी तरक़्क़ी यानी वृद्धि होती रहे और परमार्थ भी थोड़ा-बहुत बन जावे ॥

६—ऐसे जीव, जब तक कि उनकी मर्ज़ी और चाह के मुवाफ़िक़ सब काम उनके दुनिया और परमार्थ के बनते जावेंगे, तब तक तो मौज और हुक्म सच्चे मालिक को थापते और मानते रहेंगे, पर जब कोई काम उनकी चाह के मुवाफ़िक़ दुरुस्त नहीं होगा या किसी तरह का कोई नुक़सान होवेगा, उस वक़्त जो कोई यह कहेगा कि मौज से हुआ तो नाराज़ हो जावेंगे, और ग़ुस्से में भर आवेंगे और सच्चे मालिक पर तान लगावेंगे कि "वह बे-रहम और निर्दई है और अपने बच्चों पर दया नहीं करता। क्या वह दुनिया का थोड़ा सा सुख जो हज़ारों जीव दुनियादार भोग रहे हैं, अपने भक्तों को नहीं दे सकता या उनकी थोड़ी चाह दुनिया की पूरी नहीं कर सकता? वह तो समर्थ है, चाहे जो कुछ कर सकता है और चाहे तो बग़ैर किसी तकलीफ़ के सब काम अपने भक्तों का बना सकता है और मन की चंचलता और मलीनता और काम, क्रोध, लोभ, मोह वग़ैरा के ज़ोर को भी घटा सकता है, फिर वह ऐसी दया क्यों नहीं करता"? और सबब न होने ऐसे कामों का, उनकी चाह के मुवाफ़िक़, उनकी समझ में जैसा चाहिए, नहीं आ सकता है। इस वास्ते, वे हमेशा डगमग यानी डाँवाडोल रहते हैं, कभी प्रीति और प्रतीतवान और कभी रूखे और फीके और बे प्रतीत। पर जो ऐसे जीव संतों के

सतसंग और परमार्थ में लगे रहेंगे तो धीरे-धीरे उनका भी काम बन जावेगा और एक दिन सच्चे और पूरे प्रेमियों के घाट यानी दर्जे पर आ जावेंगे, और तब वे भी सच्चे मालिक की मौज को हर एक काम में मानने लगेंगे ॥

बचन तेईसवाँ

परमार्थ में गुरु की ज़रूरत और उनकी क़िस्में और दर्जे और भेद

१—कोई काम दुनिया का ऐसा नहीं है कि जो बिना उस्ताद के सिखाये हुए कोई आदमी (औरत या मर्द) कर सके, यहाँ तक कि बच्चे को खड़ा होना और चलना और खाना और पीना बग़ैर सिखाये नहीं आता है, और लिखना और पढ़ना और हर पेशे का काम तो ज़रूर मास्टर या उस्ताद से सीखना पड़ता है। इसी तरह सच्चे परमार्थ यानी सच्ची मुक्ति के हासिल करने के लिए भी अभ्यास के सिखाने वाले की, जिसको गुरु कहते हैं, निहायत ज़रूरत है ॥

२—पंडित या पुरोहित या पाधे जो परमार्थी शास्त्र या पोथियाँ पढ़ाते हैं या कर्म कराते हैं या बाहरी पूजा और होम और यज्ञ कराते हैं, इनको गुरु नहीं कहा जा सकता है। जो कोई आप पढ़ना जानता है, यानी थोड़ा-बहुत विद्यावान है, वह कर्मकांड और ज़ाहिरी पूजा की किताबें आप पढ़ सकता है और उनकी कार्रवाई कर सकता है। पर ऐसी दस्तूर रखा गया है कि चाहे कोई पढ़ना

जाने या नहीं, वे सब पंडित या पाधे या पुरोहित से कर्मकांड की कार्वाई में मदद लेते हैं और उसी वक़्त उनका हक़्क़-ए-मेहनत यानी जो उनका दस्तूर हर एक पूजा और रस्म और त्यौहार वग़ैरा का मुक़र्ररर है, उनको अदा कर देते हैं ॥

३—आम परमार्थी गुरुओं की २ क़िस्में हैं—एक, वंशावली गुरु, और दूसरा, नेष्ठावान यानी अभ्यासी गुरु ॥

(१) वंशावली गुरु

४—वंशावली गुरु वे हैं कि जिनके घराने में चेला करने का व्यौहार जारी है और इनकी तीन क़िस्में हैं।

(क) पंडित यानी ब्राह्मण। इनको हिन्दुस्तान में, लोग पुराने वक़्तों से बड़ा मानते चले आये हैं। और जब किसी को मुक़र्ररा उम्र पर ज़रूरत गुरु करने की होती है तब पंडित या पुरोहित या साधारण ब्राह्मण को अपना गुरू बनाते हैं, और उससे जिस देवता का इष्ट बाँधना और पूजन करना मंजूर होवे, उसी का मंत्र और विधि ज़ाहिरी पूजा की दरियाफ़्त करके पूजा जारी करते हैं। और मंत्र का ज़बानी जाप करते हैं ॥

(ख) भेष, जिन्होंने फ़क़ीर या साधू के कपड़े पहने हैं और अपना घरबार छोड़ दिया है या संयोगी साधुओं की तरह से गृहस्थ में रहते हैं। जो कोई उनके पास परमार्थ की चाह लेकर जावे तो वे उसको या तो रंगीन कपड़े देकर फ़क़ीर या साधु बना लेते हैं, और जैसा कुछ कि

उन्होंने अपने गुरु से सुना है या बानी में पढ़ा है, उसके मुवाफ़िक़ मंत्र या नाम का उपदेश कर देते हैं, और अगर गृहस्थ होयं तो सिर्फ़ उसको उपदेश मंत्र या नाम का कर देते हैं। ये लोग भी पंडितों और ब्राह्मणों के मुवाफ़िक मंत्र या नाम का ज़बानी जाप बताते हैं। ऐसे साधु बहुत कम हैं कि जो मन से या स्वांस से नाम जपने की विधि बतावें। और नामी का भेद अंतर में तो कोई नहीं बताता है, बल्कि पंडित और भेद दोनों इस भेद को आप ही नहीं जानते हैं।

(ग) गुसाईं और महंत और साहबज़ादे। ये लोग चाहे जिस क़ौम से होवें, किसी नेष्ठावान गुरु की औलाद में, या उनके सिलसिले में गद्दी-नशीन होने से गुरू कहलाते हैं, और अपने घराने के पुराने चेलों की औलाद और उनके रिश्तेदारों के मंत्र, या नाम का ज़बानी जाप करने का उपदेश देते हैं। पर ये आप नेष्ठावान नहीं हैं और न अपने बुज़ुर्ग या गुरु की नेष्ठा यानी अभ्यास की युक्ति से वाक़िफ़ हैं, और न उसको जानना चाहते हैं, क्योंकि ये संसारी हैं और सिवाय अपने घराने के सेवकों की औलाद और अपने चेलों से धन और माल लेने के, और चाह नहीं रखते। इनका भी आदर और भाव इनके चेले, पंडित और ब्राह्मण और भेषों के मुवाफ़िक़ करते हैं, बल्कि कहीं कहीं उन से बहुत ज़्यादा ख़ातिर और पूजा इन लोगों की होती है॥

५—और मालूम होवे कि इनके चेलों में से कोई

सच्चा खोजी परमार्थ का नहीं है, और जो कोई ऐसा है, वह फ़ौरन इनको छोड़ कर सच्चे गुरु का खोज करके, और वहाँ से उपदेश लेकर अपना काम परमार्थी जारी करता है। यह वंशावली गुरु किसी अपने चेले की ऐसी हालत देख कर उसको बहुत दिक़ और तंग करना चाहते हैं। पर जो कि ये लोग सच्चा परमार्थ बिल्कुल नहीं जानते, इस सबब से इनकी कोई कार्रवाई उसके साथ पेश नहीं जाती ॥

(२) नेष्ठावान गुरु

६—नेष्ठावान गुरु उनको कहते हैं कि जो अपने मन के सिद्धांत का भेद घट में दरियाफ़्त करके और वहाँ तक अपने मन और प्राण को चढ़ाने की युक्ति का अभ्यास, जैसा कि वेद और शास्त्र या और मज़हबी किताबों में पिछले महात्माओं ने लिखा है, अपने वक़्त के नेष्ठावान गुरु से उपदेश लेकर, उनकी कमाई करते हैं, और अभ्यास करके उस दर्जे तक पहुँचे हैं या पहुँचने वाले हैं। इस क़िस्म के गुरुओं के चार दर्जे हैं ॥

(क) सिद्ध गुरू। इनका दर्ज़ा बहुत नीचा है और ये अक्सर नीचे दर्जे की सिद्धि और शक्ति में अटक कर रह गये। और इनका और इनके संगियों का उद्धार नहीं होता, यानी ये स्थूल माया के घेरे में ऊँचे-नीचे देश और योनियों में जन्मते-मरते हैं।

(ख) प्रेमी और भक्त गुरु। ये कोई औतार स्वरूप या किसी बड़े देवता जैसे विष्णु या शिव या शक्ति

की अन्तरमुख उपासना अपने घट में करके उसके लोक तक पहुँचे या पहुँचनहार हैं। और वे उसी स्वरूप या देवता की भक्ति अपने सेवकों को सिखाते हैं और अंतर में उस स्वरूप का दर्शन पाने और उसके लोक तक पहुँचने की युक्ति बताते हैं। ये भी माया की हद में रहे, और न इनका और न इनके संगियों का पूरा उद्धार हुआ। अलबत्ता बहुत काल के लिए, मरने के बाद, अच्छे सुख-स्थान में या अपने उपास्य के लोक में वासा पाते हैं, और वहाँ अपने उपास्य के दर्शन और संग का आनन्द लेते हैं। और कोई-कोई उसी रूप में मिल कर एक हो जाते हैं और अपना आपा बिसर जाते हैं। चार क़िस्म की मुक्ति इनके मत में मुक़र्रर हैं और वे ये हैं—

पहली, सालोक—अपने उपास्य के लोक में बसना॥

दूसरी, सामीप—अपने उपास्य के पास रहना॥

तीसरी, सारूप—अपने उपास्य का रूप धारण करना॥

चौथी, सायुज्य—अपने उपास्य से मिल कर एक हो जाना।

ऐसे अभ्यासी गुरु, आज-कल बहुत कम मिलते हैं। इन सब के मत या घराने में जो कोई कि है, वे सब के सब या तो मूर्ति और तीर्थ पूजा में लग गये, या वाचक ज्ञान सीख कर अपने को ब्रह्मरूप मान कर पूरे बन बैठे हैं। और नेष्ठा यानी अभ्यास की युक्ति इनके मत या घराने में कोई नहीं जानता है। और ये न अपने आचार्यों की बानी को पढ़ते हैं, और जो पढ़ते भी हैं तो उसमें जो युक्ति

का इशारा किया है, इनकी समझ में नहीं आता, और न इनको इस बात की खोज है कि किसी अभ्यासी गुरू से मिल कर उसका हाल दरियाफ़्त करें और नेष्ठा करें ॥

(ग) योगी गुरु। यह मुद्रा या प्राणायाम की साधना करके अपने मन और प्राण को चढ़ा कर छठे चक्र तक पहुँचाते हैं और अपने सेवकों को भी इसी अभ्यास का उपदेश करते हैं। इनमें से बाज़े, शुरू में, कोई-कोई साधन हठ योग के, वास्ते सफ़ाई मन के, करते हैं और उनमें बड़ा काष्ठा और भारी तक़लीफ़ें उठाते हैं। ये भी ब्रह्मांडी माया के घेर में रहे और इस वास्ते पूरा उद्धार इनका भी नहीं हुआ, अलबत्ता परमात्मा का दर्शन इनको प्राप्त हुआ और ये चिदाकाश में समाये। पर वहाँ से बहुत काल के पीछे उत्थान होता है। ऐसे महात्मा गुरु आजकल दुर्लभ हैं और इनके घराने में भी मूर्ति या कोई निशान की पूजा जारी हो गई।

(घ) चौथे, योगेश्वर ज्ञानी। ये भी मुवाफ़िक़ योगियों के, अभ्यास करके, पहले ब्रह्म पद और फिर उसके परे पारब्रह्म पद में पहुँचे और तीनों लोकों की माया को जीत लिया। पर ये आदि माया के मंडल के पार नहीं गये, हालाँकि कुल नेष्ठा वालों में इनका दर्जा बहुत ऊंचा है। ऐसे महापुरुष गुरु आजकल महा-दुर्लभ हैं, और जिस किसी को वे मिल जावें, उसके बड़े भाग्य ॥

७—पिछले वक़्त में वशिष्ठजी और व्यासजी और रामचन्द्रजी और कृष्ण महाराज इस दर्जे तक पहुँचे,

और अब इनके घरानों में आम तौर पर मूर्ति और तीर्थ पूजा या वाचक ज्ञान जारी है और अन्तरमुख साधना का ज़िक्र बहुत कम है। और जो कहीं कोई साधना करते हैं तो वह दृष्टि की साधना या नाम के अन्तरमुख सुमिरन से ज़्यादा नहीं जानते, और यह काम भी वे, बे-ठिकाने करते हैं, यानी भेदी नेष्ठावान गुरु से भेद लेकर अभ्यास नहीं करते हैं। इस सबब से इनको फ़ायदा बहुत कम होता है, पर इनके मन में अहंकार बड़ा भारी पैदा हो जाता है॥

८—इनके सिवाय, आज-कल वाचक ज्ञानी, ज्ञान के ग्रन्थों को पढ़कर और विद्या-बुद्धि के मुवाफ़िक़ उनके बाहरी अर्थ समझ कर, अपने तईं ब्रह्म मानते हैं और जीवों को भी यही उपदेश सुनाते और समझाते हैं। जो बचन एकताई के कि योगेश्वर ज्ञानियों ने अपने सिद्धांत के ग्रन्थों में लिखे हैं, उनको इन लोगों ने अलेहदा छाँट लिया है, और उपासना और योग-अभ्यास के अंग को उन ग्रन्थों में से छोड़ दिया। वहाँ साफ लिखा है कि जब तक अन्तरमुख उपासना और योग-अभ्यास करके चार साधन यानी वैराग, विवेक, षट् सम्पत्ति और मुमोक्षता पूरे-पूरे न आवें, तब तक सिद्धान्त यानी एकताई के बचनों के पढ़ने और सुनने का कोई जीव अधिकारी नहीं है। पर इन वाचक ज्ञानियों ने इस बचन के, अपने मन की समझौती के मुआफ़िक़ अर्थ लगा कर, और अपने आपको ज्ञानी मान कर सहज में थोड़े से ग्रन्थ पढ़कर, ब्रह्म स्वरूप बन जाना पसन्द किया। इस सबब से, सिवाय ज्ञान के ग्रन्थों के

पढ़ने और पढ़ाने और ज्ञान की बातें बनाने के, असली हालत इनके मन और इन्द्रियों की नहीं बदलती। और जो कि ये लोग कोई अन्तरमुख अभ्यास नहीं करते और न जानते हैं, इस सबब से इनके मन और इन्द्रियों की हालत, थोड़ी-बहुत मुवाफ़िक़ संसारी जीवों के मन और इन्द्रियों के रहती है ॥

९—आम दस्तूर है कि मन, ऊँचे से ऊँचे और बढ़ से बढ़की बात को जल्दी से और बे-मेहनत और तकलीफ़ के हासिल करना चाहता है। इस सबब से हर आदमी जिसको थोड़ी-बहुत विद्या और समझ हासिल है, इस मत में जल्द शामिल हो जाता है और अहंकार करके अपनी असली हालत की (कि निपट संसारियों के मुवाफ़िक़ है) बिल्कुल परख नहीं करता। ये बाचक ज्ञानी निर्भय होकर, भेषों और ब्राह्मणों और गृहस्थियों को, वग़ैर परखे उनके अधिकार के, वाचक ज्ञानी बनाते चले जाते हैं। इस में भारी नुक़सान उनका और उनके संगियों का होता है कि वे भक्ति मार्ग में शामिल होने के लायक़ नहीं रहते और दीनता मन में बिल्कुल नहीं रहती। इस सबब से उनके उद्धार का रास्ता बिल्कुल बन्द हो जाता है ॥

१०—इस समय में थोड़ा या बहुत सब मतों के लोग जिनको थोड़ी विद्या और बुद्धि हासिल है, बाचक ज्ञान को पसंद करके, इस नये मत में शामिल होते चले जाते हैं, क्योंकि इसमें उनको बिल्कुल आज़ादी यानी

निरबंधता हासिल हो जाती है और किसी का ख़ौफ़ और शर्म नहीं रहती। निर्भय होकर मन और इन्द्रियों की धारों में बहते हैं और अपने हाल से बे-ख़बर रहते हैं। इन बेचारों ने बड़ा धोखा खाया। पर इनका इलाज कुछ नहीं है, क्योंकि ये साधन करने वालों की बात बिलकुल नहीं सुनना चाहते हैं, बल्कि उनको नादान समझते हैं और अपने आपको समझदार और होशियार मानते हैं। ये लोग अपनी करनी और व्यवहार के मुवाफ़िक़ अंत में फल पावेंगे ॥

११—इन गुरुओं से, जिनका ज़िक्र ऊपर लिखा गया (जो वे अपने मत के पूरे नेष्ठावान भी होवें) जीव का सच्चा उद्धार नहीं हो सकता है, क्योंकि उनका सिद्धांत-पद माया की हद में है। इस वास्ते अब उन महापुरुषों का ज़िक्र, कि जिनके वसीले से जीव सच्ची मुक्ति हासिल कर सके, किया जाता है, और उनका नाम संत सतगुरु और साधगुरु है। संत सतगुरु उनको कहते हैं कि जो पिंडी और ब्रह्मांडी माया की हद के पार, जहाँ दयाल देश अथवा निर्मल चैतन्य देश है, पहुँच कर, सच्चे मालिक सत्तपुरुष राधास्वामी से मिले। और उनका रास्ता चलने का घट में है। और सुरत-शब्द योग के अभ्यास से वह रास्ता तै करके अभ्यासी उस देश में पहुँच सकता है, और वहाँ पहुँच कर जन्म-मरण से रहित होकर परम आनंद को प्राप्त होता है। वह देश भी अमर है और वहाँ का आनंद भी अपार और अमर है ॥

१२—साधगुरु उनको कहते हैं जो संतों की युक्ति के मुवाफ़िक़ अभ्यास करके, मक़ाम सुन्न में, जो त्रिकुटी और ओंकार पद के परे है, पहुँचे हैं, और आगे संत-गति को प्राप्त होने वाले हैं। इनसे मिल कर भी जीव को वही फ़ायदा हो सकता है जैसा कि संत सतगुरु से, क्योंकि साधगुरु, संत सतगुरु के बनाये हुए हैं॥

१३—जब तक कि जीव को इन दोनों महापुरुषों में से कोई न मिलेगा और वह, उनको अपना गुरु या सतगुरु धारण करके, प्रेम सहित सुरत-शब्द योग की कमाई न करेगा, तब तक सच्चा उद्धार या सच्ची मुक्ति किसी तरह हासिल नहीं हो सकती है। इस वास्ते सब जीवों को, जो अपना सच्चा कल्याण चाहते हैं, मुनासिब और ज़रूर है कि संत सतगुरु या साधगुरु को खोज कर, उनकी शरण लेवें, और उन्हीं की बानी का पाठ और उन्हीं की युक्ति का अभ्यास करें। यह भेद और यह युक्ति और किसी मत में नहीं है॥

१४—जो कोई यह कहे कि हम एक बार गुरु कर चुके हैं (और वह ऐसी किस्म में से हैं जिनका ज़िक्र पहले हो चुका है), अब दुबारा संत सतगुरु या साधगुरु को कैसे गुरू धारण करें, तो, इसका जवाब यह है कि जो गुरु कि बाहरमुखी पूजा का, जैसे मूर्ति और तीर्थ, का उपदेश करते हैं या इष्ट ब्रह्म या ईश्वर या देवताओं का बँधवाते हैं, या अन्तर में नाम का सुमिरन या इष्टि का साधन या ध्यान, बिना पते और भेद स्वरूप के, जिसका कि ध्यान

किया जावे, बताते हैं, पर घट का भेद और युक्ति अन्तर में चलने की नहीं जानते और सच्चे मालिक और उसके धाम की और उससे मिलने के रास्ते की जिनको ख़बर भी नहीं है, ऐसों का नाम साधगुरु या सतगुरु नहीं हो सकता है। फिर जब किसी ने इनसे उपदेश लिया और इनको भ्रम करके, और अन-समझता से गुरू माना, और असल में वे गुरू नहीं हैं, तो फिर इनके छोड़ने में किसी तरह का दोष या पाप या नुक़सान नहीं हो सकता। ये लोग तो अक्सर करके मान और धन के लोभी हैं और सच्चे परमार्थ से न आप वाक़िफ़ हैं और न किसी दूसरे को समझा सकते हैं, न कभी अपने चेलों से परमार्थ की कमाई का हाल पूछते हैं और न ज़िक्र करते हैं। फिर उनके छोड़ने में किसी तरह का हर्ज नहीं हो सकता। अलबत्ता उनकी पूजा और भेंट बन्द न करना चाहिये, यानी जब वे आवें तो दस्तूर के मुवाफ़िक़ उनकी पूजा-भेंट कर देना चाहिए, और इतना ही वे चाहते हैं। संतों का बचन है—

झूठे गुरु की टेक को, तजत न कीजे बार।
द्वार न पावे शब्द का, भटके बारम्बार॥

अलबत्ता जिसको पहले से ही, भाग्य से, सच्चे और पूरे गुरु मिल जावें, तो उसको फिर कोई ज़रूरत दूसरे गुरु के खोजने और धारण करने की न होगी, क्योंकि वे सब भेद और युक्ति बताकर पूरी शान्ति सेवक की कर देंगे और अन्तर में उसके अभ्यास में मदद देते रहेंगे। और जो कोई मूर्खता

से हठ करके, ओछे गुरु को नहीं छोड़ेगा, और जब संत सतगुरु भाग्य से मिलें, उनकी शरण नहीं लेगा, तो उसका भारी अकाज होगा यानी उसका उद्धार हरगिज़ नहीं होवेगा।

१५—बाज़े लोग ऐसा ख़्याल रखते हैं कि स्त्री और पुरुष एक गुरू के चेले होने से आपस में भाई और बहन समझे जावेंगे, इस वास्ते जोरू और ख़ाविंद को एक ही गुरु से उपदेश नहीं लेना चाहिये। यह ख़्याल बिलकुल ग़लत है। साधगुरु और सतगुरु का दर्जा पारब्रह्म और सत्तपुरुष के बराबर है, तो वे सब रचना के कर्ता और मालिक हुए। रचना में कुल जीव मालिक के बाल-बच्चे हैं और सब आपस में भाई और बहन हैं। फिर वही रिश्ता परमार्थ में भी, जबकि भाग्य से किसी को संत सतगुरु या साधगुरु मिल जावें, समझा जावेगा, और व्यवहार में ख़ाविंद और जोरू का नाता ब-दस्तूर क़ायम रहेगा। इसमें कोई दोष नहीं लगता। ऐसा भ्रम किसी को अपने चित में नहीं लाना चाहिये, नहीं तो अपना या अपनी स्त्री का अकाज करेगा। बहुत से देशों और शहरों में वंशावली गुरु से कुल घर के लोग, क्या स्त्री, क्या पुरुष उपदेश लेते हैं और ऐसा संयम या भ्रम, जिसका ऊपर ज़िक्र हुआ है, मन में नहीं लाते हैं।

१६—बहुत से जीव परमेश्वर या देवता या किसी पिछले गुरू (जिनका इष्ट या पूजन उनके घराने में अर्से से चला आता है) टेक बाँधकर, निश्चिन्त हो जाते हैं, और कहते हैं कि नये गुरु या इष्ट की कुछ

ज़रूरत नहीं है। जो उनको पुराने इष्ट की प्रतीत है तो इसी में उनका काम बन जायेगा। यह समझ उनकी बिल्कुल ग़लत है। पर जो वे निपट संसारी हैं और परमार्थ की चाह और खोज उनके मन में बिल्कुल नहीं है, तो उनको इख़्तियार है कि चाहे जिसकी टेक बाँध कर चुप्प बैठे रहें, या किसी को भी न मानें और न कुछ परमार्थ की करनी करें। पर वे लोग जो अपने और दुनिया के हाल को देखकर, उसके दुख-सुख और देह के जन्म-मरण से छूटना चाहते हैं, वे टेकियों को मूर्ख और संसारी समझ कर उनका संग नहीं देंगे, और आप सच्चे गुरु को खोज कर उनका सतसंग करेंगे, और उपदेश लेकर अपने जीव के कल्याण के वास्ते नित अभ्यास, अपने निज घर में पहुँचने की युक्ति का, करके अपना काम बनावेंगे और किसी तरह की अटक और भ्रम अपने चित में, निस्बत सच्चे गुरु और सच्चे मालिक के इष्ट के, धारण करने में नहीं लावेंगे। अलबत्ता पहले कोई दिन सतसंग करके उनके बचन और उपदेश की, थोड़ी-बहुत अपनी समझ और वाक़िफ़ियत के मुवाफ़िक़, इस क़दर जाँच करेंगे कि जिस से उनके दिल को पूरा यक़ीन इस बात का हो जावे कि ज़रूर संतों की युक्ति की कमाई से सच्ची मुक्ति और पूरा उद्धार हासिल होगा। यानी सच्चे मालिक के धाम में, जो सबसे ऊँचा और सब के परे है और जहाँ से कुल रचना हुई और उसकी सम्हाल जारी है, एक दिन संत सतगुरु और कुल मालिक की दया से पहुँच जावेंगे, और वहाँ पूर्ण और अमर आनन्द पावेंगे ॥

१७—इस जगह इतना बयान करना ज़रूर है कि चाहे कोई कैसी मज़बूत टेक परमेश्वर या किसी औतार या देवता या पिछले गुरु की रखता होवे, उसका सच्चा उद्धार, बग़ैर अपने वक़्त के संतसतगुरु या साधगुरु के सतसंग और उपदेश के, किसी सूरत में मुमकिन नहीं है, क्योंकि हर एक जीव के मन में अनेक तरह के भ्रम और संशय रहते हैं और दुनिया और उसके व्यवहार और सामान की पकड़ और उसमें आसक्ति हर एक के मन में बहुत धसी रहती है, और बहुत सी संसारी और परमार्थी बातों की समझ अपनी-अपनी बुद्धि के मुवाफ़िक़ हर एक रखता है। जब सच्चे परमार्थ और सतसंग में आवे, तब उसको ख़बर अपनी ग़लती की मालूम होती है, और जो इष्ट कि उसने बाँधा है, उसका भेद भी पूरा-पूरा मालूम होता है। सब देवताओं और ईश्वर और परमेश्वर और ब्रह्म और परब्रह्म का भेद और दर्जा भी संतों के सतसंग में मालूम होवेगा। और दूसरी जगह यानी और मतों में इष्ट का निर्णय बहुत कम करते हैं। इस सबब से जीव नीचे और ऊँचे देशों में माया के घेर के अन्दर पड़े रहते हैं। इसी तरह मन और माया का भेद और उनके अनेक दर्जों की ख़बर संतों के सतसंग में मालूम पड़ेगी, और युक्ति चलने की, मन-माया से बच कर, अपने निज घर में पहुँचने की भी वहीं हासिल होवेगी। अब ख़्याल करना चाहिए कि जो कोई अपने बुज़ुर्गों से सुन कर किसी इष्ट की टेक बाँधे हुए हैं और अपने वक़्त के गुरु यानी सच्चे परमार्थ के भेदी का खोज नहीं करते, और जो उनका पता भी लगे तो उनसे नहीं

मिलते, और न कोई बात दरियाफ़्त करना चाहते हैं, तो ऐसे शख़्सों को कभी सच्चे मालिक की ख़बर न होगी। और न अपने इष्ट में जैसा कुछ कि है, सच्ची प्रीति और प्रतीत आवेगी, और न उनको परमार्थ की चाल-ढाल की ख़बर पड़ेगी, और न दुनिया और मन और माया के धोखे का हाल मालूम होगा, और न उनके संशय और भ्रम दूर होवेंगे। फिर ऐसे जीवों को असली फ़ायदा परमार्थ का कैसे हासिल हो सकता है ? वे अपने मन की चाल और व्यवहार के मुवाफ़िक़ अपनी भली-बुरी करनी का फल, सुख या दुख, नीच-ऊंच योनियों में पावेंगे, और सच्ची मुक्ति उनको कभी नहीं मिलेगी ॥

१८—गुरु और सतगुरु और संत नाम मालिक के हैं। और जो कोई सच्चा और पूरा अभ्यासी है और मेहनत के साथ अभ्यास करके मालिक के चरणों में पहुँचा है, वह मालिक के साथ मिल कर एक हो गया या मालिक का प्यारा पुत्र हो गया। फिर उसका भाव और अदब उसी तरह करना मुनासिब है जैसा कि मालिक का। और जो कि संत-मत में बिना पूरे गुरु के, पूरा काम नहीं बन सकता, इस वास्ते आम हुक्म है कि जो कोई गुरु धारण करना चाहे, या सच्चे मालिक का और अपने निज घर का भेद और रास्ता और युक्ति उसके त करने की दरियाफ़्त करना चाहे, तो उसको चाहिये कि संत सतगुरु या साधगुरु को खोज कर उनका शरण लेवे। और जहाँ-तहाँ संतों की बानी में जा गुरु और सतगुरु और संत का नाम आया है

उसका मतलब दोनों से यानी सच्चे मालिक और पूरे गुरु से है। और इस नाम का लिहाज़ और ख़्याल मालिक को आप मंज़ूर है। यानी जो कोई उसको, इस नाम से, सच्चे मन से पुकारता है तो वह ज़रूर किसी न किसी तरह से उसकी मदद यानी उस पर गुप्त दया करता है। और यह बात साफ़ ज़ाहिर है कि जो कोई बिना सतगुरु से मिले हुए और उनका सतसँग और सेवा किये हुए मालिक से मिलने की अभिलाषा करता है, वह नादान है। उसको कभी मालिक का दर्शन नहीं मिल सकता, क्योंकि सच्चे गुरु, जीव की गढ़त करके यानी उसकी अन्तर और बाहर दुरुस्ती करके और उसके मन में सच्चा प्रेम और भक्ति सच्चे मालिक की पैदा करके, उसको क़ाबिल मालिक के दरबार में दाख़िल होने के बनाते हैं। और जितने कि आसुरी यानी हैवानी या काल के अंग उस में हैं, उनको दूर करके, दैवी यानी दयाल के अंग उसके अंतर में जगाते और पैदा करते हैं और उसके मन और संसारी वासना का, अभ्यास कराके, जीते-जी नाश करा देते हैं। तब जीव सच्चे मालिक के दर्शनों के क़ाबिल होता है। और जो इस तौर से उसकी तरबियत और गढ़त नहीं होवे, तो वह मुवाफ़िक़ पशुओं के यानी हैवानों के रहता है और किसी हालत में मालिक के दरबार में नहीं पहुंच सकता है और न वहाँ ठहर सकता है॥

१६—जैसे हाकिम ने हुक्म दे रक्खा कि जो कोई

डाक्टरी या वकालत या मुन्सिफ़ी या इंजिनियरी का इम्तिहान, अपनी लियाक़त और क़ाबलियत का, मुक़र्रर किये हुए इम्तिहान लेने वालों के सामने जा कर देवे, और उनके अफ़सर की सनद या परवाना हासिल करके पेश करे, तब वह उन ओहदों के पाने के लायक़ समझा जावेगा, इसी तरह मालिक के दरबार से हुक्म है कि जो कोई पूरे गुरु का परवाना हासिल करेगा, वही महल में दख़ल पावेगा। इस वास्ते, जिस ने पूरे गुरु का संग नहीं किया और न उनकी प्रसन्नता और दया हासिल की, उसका सच्चा उद्धार कभी नहीं होगा, और न उसको सच्चे मालिक का कभी दर्शन मिलेगा।

२०—यह बात ग़ौर करके समझने के लायक़ है कि मालिक को हर कोई, हर वक़्त, सब जगह मौजूद मानते हैं, और उसकी मौजूदगी का यक़ीन भी करते हैं, पर लोगों का यह हाल है कि जैसी उनके मन में तरंगें उठती हैं, उसी मुवाफ़िक़ कार्रवाई भली और बुरी करते हैं, और ज़रा भी मालिक का ख़ौफ़, बुरे काम के सोचते और करते वक़्त नहीं करते। हाकिम और बिरादरी का थोड़ा डर मान कर, चाहे किसी बुरे काम से बच जावें, और जो उस काम के ज़ाहिर होने का ख़ौफ़ नहीं है तो हाकिम और बिरादरी का भी डर मन में नहीं आता है। यह हाल कुल दुनियादारों और आम परमार्थियों का है—यानी उनके दिल में गुरु और मालिक का ख़ौफ़ जैसा कि चाहिए, बिल्कुल नहीं

आता है, सिवाय उस हालत के कि जब कोई उनकी औलाद या माल के नुक़सान होने का, किसी काम के करने से, ख़ौफ़ दिलावे। सो यह बात कम अक़्ल वाले लोग मानते हैं। और जो थोड़ा-बहुत विद्या-बुद्धि और चतुराई रखते हैं, वे ऐसे ख़ौफ़ को भी धोका देना समझ कर मन में नहीं लाते ॥

२१—अब जो कि पूरे गुरु की शरण में आये हैं उनका हाल सुनो। जो कि उन्होंने अपने गुरु को, मुवाफ़िक़ अपनी-अपनी पहिचान के, जो सतसंग करके हासिल की है, और मुवाफ़िक उन पर्चों के जो उनको अभ्यास की हालत में अंतर में मिले हैं, किसी क़दर समर्थ और अंतरयामी माना है, या सच्चे मालिक का थोड़ा-बहुत जलवा देखा है और उसकी दया अंतर में परखी है, तो हर काम करने में उनकी थोड़ी-बहुत याद अपने गुरु और मालिक की आ जाती है, और उसके साथ थोड़ा-बहुत ख़ौफ़ उनकी अप्रसन्नता यानी नाराज़गी का, और उसके सबब से होने नुक़सान का उनके आनन्द और रस में जो वे रोज़ाना अभ्यास में लेते हैं और तरह २ के हर्ज का परमार्थ और स्वार्थ में, उनके दिल में पैदा हो जाता है। इस सबब से ऐसे कामों को वे ऐसे निर्भय होकर नहीं करते जैसे कि और लोग करते हैं। पहले तो वे जहाँ तक उनका बस चलेगा, ऐसे कामों से गुरु और मालिक की दया और उनकी युक्ति का बल लेकर बचेंगे, और जो ऐसा न होगा और वह काम उनसे लाचारी में बन पड़ेगा, तो उसके

पीछे निहायत शर्मिन्दा होकर अपने अंतर में अफ़सोस और दुःख और ख़ौफ़ मान कर बहुत दीनता और आजिज़ी के साथ प्रार्थना, वास्ते माफ़ी और बचाव और सहायता आइन्दा के, करेंगे। इसी तरह आहिस्ता-आहिस्ता कभी-कभी भूलते हुए और चूकते हुए और फिर शर्मा कर पछताते हुए और झुरते हुए, एक दिन उनको पूरी सफ़ाई अंतर की हासिल हो जायगी, और फिर मालिक के दरबार में दख़ल पाने के लायक़ हो जायेंगे।

२२—जिस किसी को पूरे गुरु का संग नहीं मिला, उसको यह बात कभी हासिल न होगी और न उसके पाप कर्म दूर होंगे और न बोझ अगले-पिछले और हाल के जन्म के कर्मों का, उसके सिर से उतरेगा। और इस वास्ते जन्म-मरण और कर्म-भोग उसका बराबर जारी रहेगा। और भक्त के कर्म, अगले-पिछले और हाल के, सतगुरु की दया और उनकी युक्ति की कमाई और उसके असर से, कि दिन-दिन उसकी सुरत यानी रूह माया के देश से अलेहदा होकर निर्मल-चैतन्य देश यानी संतों के दयाल देश की तरफ़ चढ़ती जावेगी, जल्दी और आसानी से कट जावेंगे। और फिर वह निर्मल होकर अपने निज घर में जावेगा। और जब तक कि इस तरह निर्मल नहीं होवेगा, तब तक कोई किसी तरह वहाँ दख़ल नहीं पा सकता है। और यह बात बिना पूरे गुरु के संग और उनकी मेहर और दया और युक्ति की कमाई के, और किसी तरह, हासिल नहीं हो सकती है॥

२३--जो बचन कि ऊपर लिखे हैं, वे वास्ते समझाने और होशियार करने सच्चे परमार्थियों के हैं और उनके लिये कि जिनको अपने जीव के कल्याण का सच्चा फ़िक्र है और जो दुनिया की नाशमानता और अपने दुख-सुख की हालतों को देख कर ऐसा यत्न करना चाहते हैं कि जिससे बारम्बार देह धरने और उस के संग दुख-सुख सहने से बच जावें।

२४—पर वे लोग जो कि संसारी हैं या विषयी और रागी या टेकधारी हैं या बाहरमुखी परमार्थ के चलाने वाले हैं और उसी में उन्होंने अपने रोज़गार या आमदनी की सूरत निकाल रक्खी है, इन बचनों को पढ़ कर या सुन कर पसन्द नहीं करेंगे और न उनको मानेंगे। और यह सच हैं कि उनके वास्ते यह बचन भी नहीं है, क्योंकि उनके मन में दुनिया और उसके सामान और भोग-बिलास की या नामवरी की चाह ज़बर है। और संतों के परमार्थ में यह सब बातें सहअ-सहज छोड़नी पड़ेंगी, नहीं तो अभ्यास का रस और आनंद कम आवेगा या नहीं आवेगा और सच्चे उद्धार में देरी होगी या विघ्न पड़ेगा॥

२५—जो लोग कि बुद्धिमान और विद्यावान हैं और अपनी विद्या और बुद्धि और ज़ाहिरी व्यवहार की सफ़ाई का मन में मान और अहंकार रखते हैं, उनके दिल में गुरु की क़दर बहुत कम है। वे गुरु को बतौर उस्ताद यानी विद्या-गुरु समझते हैं। और जब वे मामूली परमार्थ की किताबें और पोथियाँ आप पढ़ और समझ सकते हैं, तो उनको ऐसे गुरु की भी जरूरत नहीं होता। और सत-

गुरु की महिमा और बुज़ुर्गी की तो उनको बिल्कुल ख़बर नहीं है। गुरु और सतगुरु और विद्या-गुरु उनकी नज़र में बराबर हैं यानी विद्या गुरु से ज़्यादा उनका दर्जा वे नहीं मानते हैं। सबब इसका यह है कि वे अंतरी परमार्थ से बिल्कुल ना-वाक़िफ़ हैं और न संतों और साधगुरुओं के बानी और बचन, जिसमें अंतरमुख अभ्यास ऊँचे दर्जे का ज़िक्र है, उन्होंने देखे या पढ़े हैं और न उन में उनको भाव आता है, क्योंकि वे उनके मतलब को अपनी विद्या और बुद्धि की ताक़त से नहीं समझ सकते, और भेदी और संत-मत के जानकार से पूछना और समझना ऐसी बानी और बचन का, वे अहंकार करके नहीं चाहते हैं। और असल में उनको ऊँचे और सच्चे परमार्थ की खोज भी नहीं है, और जो कोई उनको ऐसे बचन सुनावे तो प्रतीत नहीं लाते और सुनाने वाले को नादान या भ्रम में भूला हुआ समझते हैं ॥

२६—आम तौर पर इन लोगों का मत यह है कि कोई मालिक है और वह अपार और अनंत और अजन्मा और अरूप और विदेह है। किसी को नज़र नहीं आ सकता और न कोई उस तक पहुँच सकता है। उसकी पूजा सिर्फ़ इस क़दर है कि उसकी स्तुति और महिमा के बचन पढ़ना और गाना और दिल से उसके गुणानुवाद को याद करना और दुनिया की नाशमानता पर नज़र रखना और जहाँ तक बने, जीवों के साथ दया-भाव से बर्तना, और पर-उपकार करना, जैसे विद्या पढ़ाना, आराम के

मकानात बनवाना, दवाइयाँ बाँटना और भूखे-प्यासे और मोहताजों की मदद करना वग़ैरा, और उन किताबों को पढ़ना जिन में मालिक की महिमा और स्तुति लिखी है अथवा अपने चाल और चलन और व्यवहार की दुरुस्ती के लिए नसीहतें और उपदेश लिखे हैं ॥

२७—जब विद्यावानों के मत के उसूल, कम-ओ-बेश (थोड़े-बहुत) इस मुवाफ़िक़ हैं जैसा कि संक्षेप (ख़लासा) करके ऊपर लिखा गया, तब ज़ाहिर है कि उनको अंतर के परमार्थ के बताने वाले और रास्ता चलाने वाले गुरु की ज़रूरत बिल्कुल नहीं है, और इसी सबब से ये लोग गुरु भक्तों पर तान करते हैं और उनके व्यवहार को देख कर हँसी उड़ाते हैं। जो उन्होंने उपासना यानी अंतरमुख भक्ति के ग्रंथ योगेश्वरों या संतों के बनाये हुए पढ़े या देखे होते, तो इनको मालूम होता कि वह रास्ता, बिना मदद अभ्यासी गुरु के, नहीं चल सकता है, और तब अभ्यासी गुरू की बड़ाई इनके चित्त में थोड़ी-बहुत समाती। पर जिस हालत में कि वे अंतर के भेद से ना-वाक़िफ़ हैं और उसको जानना भी नहीं चाहते, तो जैसी चाल कि वे चल रहे हैं और चला रहे हैं, वही उनके वास्ते दुरुस्त है। और उनका संग वे ही लोग करेंगे जो ज़ाहिरी परमार्थी कामों से राज़ी होते हैं ॥

२८—अलबत्ता मूर्ति या कोई निशान या दरिया और दरख़्तों और जानवरों की पूजा और तीर्थ, व्रत और अनेक तरह के कर्म और धर्म और औतारों और देवताओं का उपासना इन लोगों ने क़तई मौक़ूफ़ कर दी। इतना काम

इन्होंने बेहतर किया है कि लोगों को भ्रमों से बचाया और एक मालिक का यक़ीन दृढ़ कराया। पर इस क़दर इनके मत में कसर मालूम होती है कि जब मालिक सब जगह मौजूद है, तो हर एक जीव के अन्तर में भी ज़रूर मौजूद होना चाहिये, और जब अंतर में मौजूद है तो उसकी भक्ति अंतर में करना चाहिये, जान और दिल से। बाहर की भक्ति इस कदर फल नहीं दे सकती है और न उस करनी से जन्म-मरण और देहियों के दुख-सुख से बचाव हो सकता है, क्योंकि इसका असर मन और इन्द्रियों और स्थूल या सूक्ष्म शरीर से आगे नहीं पहुँचता। और चाहिये यह कि जान तक असर पहुँचे और देहियों से जो बतौर ख़ोल या ग़िलाफ़ के रूह पर चढ़े हुए हैं, किसी क़दर जीते-जी अलेहदगी होती जावे। तब, जो प्रेम आयेगा, वह अन्तर के अन्तर से प्रकट होगा और क़ायम रहेगा और इसी ज़िन्दगी में मुक्ति का आनन्द थोड़ा-बहुत मालूम पड़ेगा। और जो कि सब रस, सुख और आनन्द का भंडार अन्तर में है, और जो इन्द्रिय भोग में रस मालूम होता है, वह भी जान या रूह की धार के सबब से, जब वह इन्द्रिय के स्थान पर आवे तब मालूम होता है, तो जो अभ्यास भक्ति का अन्तर में किया जावे तो वहाँ रस और आनन्द भी विशेष मिल सकता है। और जब कि रूह या जान का भंडार, यानी मालिक, अन्तर में मौजूद है तो वह रस और आनन्द ज़्यादा अभ्यास करने से दिन-दिन बढ़ सकता है। अब इस भक्ति और अभ्यास का भेद सिवाय संतों

और उनके साधु और सतसंगियों के, और कोई नहीं जानता है, और उन्ही के बानी और बचन में इसका हाल मुफ़स्सिल लिखा है। जब कोई यह अभ्यास अपने अंतर में करे, तब उसको सच्ची महिमा मालिक की और भी उसके भक्तों और प्रेमियों की मालूम पड़े ॥

कोई चेते सुरत जग देख असार ॥ टेक ॥
बाहरमुख पूजा नहिं भावे। यामें जीव भर्म रहे झार ॥ १ ॥
कर्म, धर्म सब काल पसारा। यामें नित बढ़ता हंकार ॥ २ ॥
सच्चा सतसँग खोजत पाया। वहाँ पाया सच्चा आधार ॥ ३ ॥
सुरत शब्द कर भेद अपारा। जो सतगुरु दीना कर प्यार। ४ ॥
दया मेहर ले करत कमाई। देखत घट में मोक्ष दुआर ॥ ५ ॥
रस पावत मन अति हरषाना। मगन हुई सुर्त सुन झनकार ॥ ६ ॥
राधास्वामी दीन दयाला। वेग उतारा भौ जल पार ॥ ७ ॥

बचन चौवीसवाँ

परमार्थी कार्रवाई और अभ्यास का उतार और चढ़ाव, पिछले वक़्तों से अब तक

१—मालूम होवे कि पिछले वक़्तों में, जिस को कई हज़ार वर्ष गुज़रे होंगे, छः चक्रों को, प्राणायाम योग की युक्ति से बेधकर, सहसदलकँवल तक पहुँचने पर, प्राणायाम का अभ्यास पूरा होता था। और जिन से यह अभ्यास पूरा बन आया, वे योगी कहलाये। और योगेश्वर उसके भी आगे एक मक़ाम त्रिकुटी तक, जो कि स्थान प्राण पुरुष यानी ओङ्कार का है, पहुँचे। और यह पद असली सिद्धान्त हिन्दू मत का है कि जहाँ से तीनों लोकों को रचना का सूक्ष्म मसाला प्रकट हुआ, और सहसदलकँवल से उसका अच्छो

तरह से ज़हूरा हुआ, यानी तीन गुणों (सत, रज, तम जिनको ब्रह्मा, विष्णु और महादेव कहते हैं) और पाँच तत्वों की सूक्ष्म धारें प्रकट हुईं ॥

२—प्राणों की चढ़ाई का अभ्यास करके, जो कोई सहसदलकँवल या ओङ्कार तक पहुँचे, वही सच्चे और पूरे योगी ज्ञानी या योगेश्वर ज्ञानी कहलाये। और उनकी महिमा भारी है, क्योंकि उन्होंने दोनों ब्रह्म और परब्रह्म पद का दर्शन पाया। और जैसे इन मक़ामों से रचना आदि में हुई, उसका सब भेद उनको मालूम हुआ, और सर्व-शक्ति और सिद्धि भी उनको हासिल हुई। और जो कि वे जीव ईश्वर-कोटि थे, इस सबब से वे अपने निर्मल वैराग और अनुराग के बल से, पुरुषार्थ यानी सख़्त मेहनत करके, उन स्थानों तक पहुँचे। बाक़ी जीव इस समय में कर्मकांड और तप और जप और कर्म और धर्म में लगे रहे, और उनसे सफ़ाई ज़ाहिरी और व्यवहार की और कुछ अंतर की हासिल करते रहे, और उनके मन में मुख्यता संसार की मान-बड़ाई और भोग-विलास या परलोक के भोग-विलास की रही आई।

३—कुछ अर्से के पीछे, सच्चे योगियों ने अभ्यास मुद्राओं का जारी किया। यह मुद्रायें पाँच हैं। इन में से दो मुद्राओं का अभ्यास अन्तर में, एक दृष्टि का साधन और दूसरा शब्द का श्रवन, है। इन मुद्राओं की मदद से भी अभ्यासी अंतर में ऊँचे स्थान पर मन, और दृष्टि को जमा कर पहुँचे, और वहाँ शब्द का रस लेकर समाधिस्थ हुए ॥

४—सिवाय प्राणायाम के, योगी और योगेश्वर ज्ञानियों ने पाँच उपासनायें मुक़र्रर करीं। पहले, गणेशजी की (जिनका वासा मूलाधार यानी गुदा चक्र में है), दूसरी, विष्णु महाराज की (जिनका वासा नाभि चक्र में है), तीसरी, शिव की (जिन का वासा हृदय चक्र में है), चौथी, आत्मा यानी शक्ति की (जिसका वासा कंठ चक्र में है) और पाँचवीं परमात्मा की (जिसका मक़ाम छठे चक्र में है)। और योगी ज्ञानियों ने इसी पद को सूरज-ब्रह्म भी कहा है॥

५—जिन लोगों से प्राणों के रोकने और चढ़ाने का अभ्यास दुरुस्ती से नहीं बना, या जिन में पूरी ताक़त इस अभ्यास के करने की नहीं पाई गई, उनके वास्ते यह युक्ति उपासना की, योगी और योगेश्वर ज्ञानियों ने जारी की कि हर एक चक्र में वहाँ के देवता के स्वरूप का ध्यान करें और एक ख़ास मंत्र का, जो उसी चक्र के मुताल्लिक़ है, ध्यान के साथ जाप करें॥

६—जो कि यह अभ्यास करने से भी मन का सिमटाव और थोड़ी-बहुत चढ़ाई मन और प्राणों की ऊँचे स्थानों की तरफ और सफ़ाई अन्तर की हासिल होती है, इस वास्ते इस भक्ति मार्ग के जारी होने से किसी क़दर आसानी योग के अभ्यासियों को हुई कि बिना प्राणों पर ज़ोर देने के, वह अपनी चढ़ाई का अभ्यास थोड़ा-बहुत करके अन्तर का रस ले सके॥

७—और जिन जीवों के मन और बुद्धि और शरीर निहायत स्थूल थे, उनके वास्ते क्रिया योग और अनेक तरह के आसनों की युक्ति बताई कि जिस से वे अन्तर में स्थूल अंग की सफ़ाई करें, यानी अपने अंग-अंग को इस क़दर साफ़ रक्खें कि जिससे तमोगुण और विकारी चाहें दूर या कम होवें, और सतोगुणी अंग बढ़ते जावें, और मालिक के चरणों में प्रेम और सच्ची दीनता पैदा होवे, और अन्तरमुख अभ्यास, प्राणायाम या मुद्रा या उपासना के अधिकारी हो जावें ॥

८—पहले वक़्तों में दस्तूर था कि अभ्यासी को दर्जे-बदर्जे एक-एक स्थान का भेद और युक्ति उसके अभ्यास की बताई जाती थी, और पहिले ही, यानी एक दम कुल स्थानों का भेद नहीं देते थे। इस सबब से जो-जो अभ्यासी जिस स्थान यानी चक्र तक पहुँच कर थक कर ठहर गये, उन्होंने वही उपासना अपने-अपने संगियों में जारी रक्खी। और जो कि उन को धुर स्थान का भेद नहीं मालूम हुआ था, इस सबब से वे उसी स्थान यानी चक्र के ध्यान और जाप को (जहाँ तक वे अभ्यास करके पहुँचे), मुख्य अभ्यास समझ कर रह गये। इस तरह, एक मत के अनेक मत हो गये, यानी गणेश-उपासक और वैष्णव और शिव-उपासक यानी शैवी, और शक्ति और ब्रह्म-उपासक वग़ैरा। और हर एक अपने मत को, दूसरे के मत से बढ़ कर यानी ऊँचा मानने लगे, और आपस में तकरार और झगड़ा करके, हर एक क़िस्म के अभ्यासियों का फ़िरक़ा जुदा हो गया ॥

९—जब और ज़्यादा वक़्त गुज़रा और जीवों की दशा और हालत बदलती गई, यानी वे दुनिया के भोग-विलास की चाह बढ़ाते गये और उन भोगों की प्राप्ति के लिए ज़्यादा से ज़्यादा यत्न करने लगे, तो इस सबब से परमार्थ की बड़ाई दिन-दिन उनके मन से कम होती गई और सच्चे परमार्थी और अनुरागी बहुत कम होते गये, तब उस वक़्त परमार्थ के चलाने वालों ने बाहरमुख उपासना यानी भक्ति हर एक चक्र के देवता की जारी करी। यानी जिस स्वरूप का कि ध्यान और मंत्र का जाप वे किसी ख़ास चक्र में अपने अन्तर में करते थे, उस स्वरूप की नक़ल धातु या पत्थर की बना कर और एक मकान ख़ास यानी मन्दिर में उसको पधार कर लोगों को समझाया कि यह स्वरूप वही स्वरूप है, यानी मंत्रों के ज़रिये से उसकी प्राण-प्रतिष्ठा होने से देवता उस में आन समाया, और उसकी पूजा, असल की पूजा के बराबर हैं। इस पूजा को जारी हुए भी कई हज़ार वर्ष का अर्सा गुज़र गया॥

१०—बहुत से जीव इस क़िस्म की पूजा यानी मूर्ति-पूजन में लग गये। जब कुछ वक़्त और इस तौर पर गुज़र गया, तब जो युक्ति कि मूर्ति के रूबरू बैठ कर उसका ध्यान और मंत्र का जाप करने की बताई गई थी, लोग उसको आहिस्ता-आहिस्ता छोड़ते गये, और सिर्फ़ दर्शन का महात्म यानी मंदिर में जाकर दूर से मूर्ति की झाँकी कर लेना और पूजा-भेंट कर देना, आम तौर से जारी हो गया॥

११—फिर कुछ अर्से के बाद सिवाय उन स्वरूपों के जो कि अन्तर के चक्रों से मुताल्लिक़ थे, औतार स्वरूपों की मूर्ति मिस्ल रामचन्द्र जी, कृष्णचन्द जी, नरसिंह जी लक्ष्मण जी, बलदेव जी और और देवताओं की मूर्तियाँ बना कर नये-नये मंदिरों में पधारना शुरू हुआ। खुलासा यह है कि जैसा जिसके मन ने चाहा, या जैसा जिसको पंडितों ने समझाया, उसके मुवाफ़िक़ अनेक तरह की पूजा जारी हो गई, और उसके साथ तीर्थों की महिमा भी फैलाई गई। यानी जिस तरह जो औतार या देवता प्रकट हुए, वे जगह पवित्र समझ कर वहाँ मंदिर कसरत से बनाये गये, और महात्म वहाँ के दर्शनों का, बहुत से बहुत करके वर्णन किया गया॥

१२—जब इस तौर से मंदिर ज़्यादा बनते गये और हर एक मंदिर में भेंट और पूजा ज़्यादा आने लगी और वह उन ब्राह्मण पुजारियों को, जो कि हर एक मंदिर में मुक़र्रर किये गये थे, मिलने लगी, तब यह आमदनी की सूरत देख कर पंडितों और ब्राह्मणों ने ज़्यादा भाव के साथ मंदिरों के बनाने और मूर्ति-पूजा के बढ़ाने में मदद देना शुरू किया, और पोथियाँ उसकी महिमा और महात्म की बना कर जारी करी, जिससे कि उन किताबों को सुनकर थोड़ा-बहुत सब लोगों का झुकाव मूर्ति-पूजा की तरफ़ हो गया, और भेद असली रूप परमेश्वर और औतार और देवताओं का, और उस की खोज और उसके प्राप्ति की युक्ति गुप्त होती गई। यानी रफ़्ता-रफ़्ता पंडित और भेष, जो कि वेदों और शास्त्रों और

परमार्थी पोथियों के पढ़ने और पढ़ाने वाले थे, आप ही असली परमार्थ को छोड़ कर और संसार के भोगों की चाह बढ़ा कर, मान और धन की प्राप्ति के लिए यत्न करने लगे, और ब्रह्म विद्या का पढ़ना कि अन्तर में अभ्यास करना भूल गये, और बाहरमुखी पूजा में आम जीवों के साथ शामिल हो गये। और उसकी टेक और पक्ष धारण करके सच्चे अन्तरमुख अभ्यासियों से विरोध और तकरार करना शुरू किया, जिसमें उनकी आमदनी और रोज़गार में ख़लल न पड़े और वे अपने चेलों की नज़र में मूर्ख और नादान न ठहरें। इस तौर से बहुत पुराने वक़्तों से जीवों की परमार्थी हालत का उतार ऊँचे दर्जे से नीचे के दर्जों में होता चला आया॥

१३—इसी तरह जो जीव कि क्रिया योग और आसनों के साधन में लगे थे, वे भी एक-एक क़िस्म या अंग का थोड़ा-बहुत अभ्यास करके पूजा और मान-बड़ाई के फेर में आ गये, और उतने ही अभ्यास को बड़ा समझ कर अपने तईं पूरा और मुक्ति का अधिकारी मान बैठे। बल्कि बहुतेरों ने तो इस क़िस्म का अभ्यास जगत के दिखाने और पूजा-भेंट लेने के वास्ते, स्वाँगियों की तरह करना शुरू कर दिया। और जो कि यह अभ्यास ज़ाहिरा कठिन और सख़्त था, जैसे धोती, नेती, बस्ति, क्रिया और शंख-पसार क्रिया और खड़े रहना और पंच अग्नि तपना और जल शयन करना और तरह-तरह के आसन बाँधना और मौन रहना और नंगे रहना और काँटों या कीलों पर बैठना वग़ैरा, इस वास्ते,

दुनिया के लोग ऐसे अभ्यासियों को अचरज की नज़र से देखने लगे, और पूजा और भेंट करने लगे और वाह-वाह करने लगे ॥

१४—सच्चे योगी और योगेश्वर लोग ईश्वर कोटि थे, और उनके दिलों में असली और सच्ची चाह परमार्थ की बहुत ज़बर थी, और अभ्यास में मेहनत करने से उनको रस आनन्द आता था, और संसार के भोग-विलास उनको नाशमान और तुच्छ दिखाई देता था। इस सबब से, उन्होंने यह कठिन अभ्यास प्राणायाम का, दुरुस्ती से करके ब्रह्म या पारब्रह्म पद में वासा किया ॥

१५—जो ईश्वर-कोटि कोई बिरले रह गये, और जीव-कोटि लोग उस अभ्यास में शामिल हुए, तब उनसे वह अव्वल दर्जे का अभ्यास यानी प्राणायाम, जैसा चाहिए, न बना। पर उन में जो उत्तम जीव थे, उन से मुद्रा का अभ्यास या अन्तर में ध्यान या जाप हर एक चक्र का दुरुस्त बना, और जो संयम कि इस काम के करने के वास्ते उनको बताये गये थे, वे भी उनसे किसी क़दर दुरुस्त बन पड़े, इस तरह उनको भी आत्म या परमात्म पद की प्राप्ति हुई ॥

१६—जब कि उत्तम जीव भी कम हो गये और सब का झुकाव संसार के भोग-विलास की तरफ़ ज़्यादा होता गया, तब कसरत से जीव मूर्ति-पूजा में लग गये। पर उन जीवों से रफ़्ता-रफ़्ता मूर्ति-पूजा भी, जैसी चाहिए थी, दुरुस्त कम बनी, यानी वे उसका बर्तावा ऊपरी तौर से

करने लगे और इतने ही काम में अपनी मुक्ति समझ कर निश्चिन्त हो रहे। और जो किसी ने उनको अंतर का भेद सुनया या उन से मूर्ति के अस्ल का हाल दरियाफ़्त किया, तो अपनी नादानी की वजह से या पंडितों और भेखों के बहकाने से, उस से लड़ाई और झगड़ा करने लगे। इस तौर से नक़ली परमार्थ यानी नक़ली भक्ति और नक़ली पूजा की चाल जहाँ-तहाँ कसरत से जारी हो गई ॥

१७—जब पूरे तौर से प्राणों या मुद्रा की साधना करने वाले गुप्त हो गये, और यह अभ्यास भी बजाय चढ़ाने मन और प्राणों के, सिर्फ़ मन ठहराने के वास्ते मुफ़ीद समझा गया, यानी थोड़े दिन ऐसा अभ्यास करके लोग अपने आप को पूरा समझने लगे, और कसरत से जीव, मूर्ति या निशानों या तीर्थों की पूजा में लग गये, और जो कोई थोड़े-बहुत विद्यावान थे, वे वाचक ज्ञान में मगन हो गये और अपने को ब्रह्म मानने लगे और अक्सर क्रिया योग वाले स्वाँगी बन गये, तब इस तरह मुक्ति का रास्ता बिल्कुल बन्द देख कर, कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल की मौज से संत प्रकट हुए, और उन्होंने सब संतों की कसरें दिखला कर सुरत-शब्द मार्ग का उपदेश किया। हरचन्द शुरू में बहुत कम जीवों ने उनके बचन को माना, फिर भी बहुत से लोग उनकी बानी और बचन पढ़ने और सुनने लगे और थोड़ी-बहुत उनको अपने परमार्थ की कसरों की ख़बर पड़ती गई ॥

१८—फिर मौज से साध, एक के पीछे एक, कितने ही देशों में प्रकट हुए और उन्होंने शब्द-मार्ग का भेद

उसी मक़ाम तक का, जो कि वेदों का सिद्धान्त है, प्रकट किया। इस में बहुत से जीव लग गये, पर उनमें से पूरे और सच्चे अभ्यासी कम निकले। लेकिन संतों और साधों ने अपनी दया के बल से बहुत से जीवों का उद्धार किया॥

१९—जब ये संत और साध भी गुप्त हो गये, और उनके घरानों में भी सिर्फ़ बानी का पाठ और नाम का ज़बानी सुमिरन रह गया, या कोई रस्म और पूजा बाहर-मुखी चल गई, और विद्या के ज़्यादा फैलने से उनमें से कितने ही वाचक ब्रह्म-ज्ञान की तरफ़ रुजू हो गये, और प्राण और मुद्रा के साधन करने वाले और उसका भेद और युक्ति के जानने वाले भी बहुत कम रह गये, और रस्मी तौर पर कसरत से जीवों का झुकाव मूर्ति-पूजा और तीर्थ, व्रत, और नियम-आचार की तरफ़ हो गया, और कोई-कोई नये विद्यावान नास्तिकों की समझ पकड़ने लगे, तब कुल मालिक राधास्वामी दयाल आप सतगुरु रूप धार कर जगत में प्रकट हुए और आसान तौर से सुरत-शब्द मार्ग की युक्ति, जो धुर मक़ाम तक पहुँचाने वाली है, और जिसको आज तक किसी संत ने भी साफ़ तौर पर प्रकट नहीं किया था, सहज और आम तौर पर समझाई, कि जिसमें हर कोई, मर्द और औरत, विद्यावान और अविद्यावान, हिन्दू और मुसलमान और ईसाई और जैनी और स्रावगी और पारसी और यहूदी, यानी किसी क़ौम या पंथ या देश का आदमी होवे, शामिल होकर, अपना सच्चा उद्धार आप हासिल कर सकता है, और जीते-जी अपनी

मुक्ति होने की सूरत, किसी क़दर (यानी जिस क़दर उसका अभ्यास तेज़ होवे) अपने अंतर में अपनी हालत को परख कर आप जाँच सकता है ॥

२०—इस मत को राधास्वामी मत या संत मत कहते हैं। और इसकी कार्रवाई इस तौर पर है कि बाहर तो संत सतगुरु या साधगुरु का (जो भाग्य से मिल जावें) सतसंग, और उनकी और उनके सच्चे भक्तों या प्रेमियों की सेवा तन, मन, धन से करना, और अंतर में सुमिरन करना सच्चे नाम का मन से, और सुनना नाम की धुन का, चित्त के साथ। और मालूम होवे कि वह धुन घट-घट में यानी हर एक आदमी के अंतर में हर वक़्त आप ही आप हो रही है, और उसका भेद, मय तफ़सील स्थानों के, जहाँ होकर वह धुन की धार सच्चे मालिक के चरणों से उतर कर पिंड यानी देह में आई है, संत सतगुरु या साधगुरु या उनके सच्चे अभ्यासी सतसंगी से मिल सकता है, और राधास्वामी दयाल के बानी और बचनों में भी साफ़ तौर पर लिखा है, और बिना भेदी अभ्यासी के समझाये, किसी की समझ में नहीं आ सकता है ॥

२१—इस अभ्यास की कमाई से, जो कोई सच्चा होकर प्रेम के साथ करेगा, आहिस्ता-आहिस्ता मन और इन्द्रियाँ क़ाबू में आती जावेंगी और एक दिन सुरत यानी रूह अन्तर में चढ़ कर, अव्वल त्रिकुटी में जहाँ वेद मत का असली सिद्धान्त है, और जहाँ मन समा जावेगा, और वहाँ से सत्त पुरुष राधास्वामी दयाल के चरणों में पहुँच

कर (जिसको दयाल देश कहते हैं और जो माया की हद्द के पार है) अजर और अमर हो जावेगी और परम आनन्द को प्राप्त होगी, यानी अपने निज घर में, जहाँ से कि आदि में सुरत उतर कर और पिंड में ठहर कर मन और माया के साथ भोगों में फँस गई थी, पहुँच जावेगी, और जन्म-मरण से सच्ची रहित हो जावेगी ॥

२२—जो कोई राधास्वामी दयाल के बचन को मान कर, जो युक्ति कि उन्होंने बताई है, उसका अभ्यास सच्चे मन से शौक़ के साथ करेगा, उसको पूरा फ़ायदा हासिल होगा, यानी एक दिन उसका सच्चा उद्धार हो जावेगा। और जो अपनी मन-हठ से या दुनिया और उसके सामान की ज़बर पक्ष धार कर न मानेना, उसका भारी नुक़सान होगा, यानी वह जन्म-मरण और देहियों के साथ दुख-सुख भोगता रहेगा और अमर देश का परमानन्द उसको प्राप्त नहीं होगा और न सच्चे मालिक का दर्शन पावेगा ॥

बचन पच्चीसवाँ

अभ्यास में तरक़्क़ी की परख और पहिचान, और वर्णन उन संयमों का जिन से अभ्यास दुरुस्त बने

१—बाज़े सतसंगी ऐसा ख़्याल करते हैं कि उनको किसी क़दर अर्से यानी दो-चार वर्ष राधास्वामी मत में

शामिल होकर थोड़ा-बहुत अभ्यास करते गुज़र गये, पर उनको अभी कुछ अन्तर में खुला नहीं या कुछ तरक़्क़ी अभ्यास की मालूम नहीं होती ॥

२—जवाब इसका यह है कि यह ख़्याल उन सत-संगियों का दुरुस्त नहीं है। उनको अपने हाल की परख नहीं है या वे अपने पिछले और हाल की हालत और तबीयत की जाँच नहीं करते, क्योंकि जो कोई सच्चे मन और सच्चे शौक़ के साथ राधास्वामी मत में दाख़िल होकर प्रेम के साथ थोड़ा-बहुत अभ्यास, दो मर्तबा हर रोज़, सुरत-शब्द मार्ग और सुमिरन और ध्यान का कर रहा है, तो मुमकिन नहीं है कि वह राधास्वामी दयाल की दया से ख़ाली रहे यानी उसको थोड़ा-बहुत रस और आनन्द भजन और ध्यान का न आवे ॥

३—रोशनी और माया के चमत्कारों का नज़र आना, यह भी एक क़िस्म की दया में दाख़िल है, और उससे किसी क़दर तरक़्क़ी अभ्यास की पाई जाती है। पर अभ्यासी को मालूम होना चाहिये कि सफ़ेद रोशनी का चाँदनी के मुवाफ़िक़ खिले हुए नज़र आना, या पाँच रंग की रोशनी जुदा-जुदा दिखलाई देना, या सूरज और चाँद और तारों का नज़र आना, तरक़्क़ी का निशान है। मगर जो मकानात या बाग़ात या सूरतें मर्दों और औरतों की नूरानी नज़र आवें, इनमें ज़्यादा मन लगाना या अट-काना नहीं चाहिये, और न उनके बार बार-नज़र आने की ख़्वाहिश करना चाहिए, क्योंकि ये कैफ़ियतें, वक़्त गुज़रने

अभ्यासी के मन और सुरत के ख़ास[1] ख़ास मुक़ामों से, ज़रूर दिखलाई पड़ेंगी और जल्द ग़ायब भी हो जावेंगी ॥

४—असली तरक़्क़ी का निशान यह है कि अभ्यासी को भजन और ध्यान में थोड़ा-बहुत रस और आनन्द आवे, यानी मन थोड़ा-बहुत निश्चल हो कर अभ्यास में लगे, और शब्द पहिले मक़ाम का दिन-दिन साफ़ और नज़दीक सुनाई देने लगे, और वक़्त अभ्यास के, मन और सुरत किसी क़दर रसीले होकर शिथिल होते जावें, और कभी-कभी इस क़दर अन्तर में लग जावें कि इस तरफ़ की ख़बर और सुध न रहे ॥

५—ऐसी हालत, बग़ैर मन और सुरत के सिमटाव के, या थोड़ा-बहुत ऊपर की तरफ़ चढ़ाने और शब्द या स्वरूप से मिलने के, नहीं हो सकती है। फिर जिस किसी की ऐसी हालत रोज़मर्रा या कभी-कभी होती है, तो समझना चाहिए कि उस को राधास्वामी दयाल, जैसा-जैसा उसकी चाल के मुवाफ़िक़ मुनासिब समझते हैं, तरक़्क़ी देते जाते हैं, यानी सिमटाव और चढ़ाई उसके मन और सुरत की करते जाते हैं और उसका नशा भी उसको अपनी दया से थोड़ा-बहुत हज़म कराते जाते हैं। नहीं तो इस क़दर रस पाकर बहुतेरे अभ्यासी मस्त होकर घरबार और कारोबार छोड़ने को तैयार हो जावें ॥

६—जो किसी को अपने अभ्यास के समय ऊपर की लिखी हुई हालत की पहिचान कम होती है, तो सबब उसका यह है कि उस अभ्यासी को गुनावन यानी ख़्या-

१—ख़ास-ख़ास।

लात अक्सर भजन और ध्यान में सताते और विघ्न डालते रहते हैं। इस वास्ते उसको चाहिये कि वह अपनी एक या दो वर्ष गुज़री हुई पहले की तबीयत की हालत का, अपनी हाल की हालत से, मुक़ाबला करे, तो जो वह सच्चा सतसंगी और सच्चा अभ्यासी है, तो उसको और उसके घर वालों को इस क़दर ज़रूर मालूम पड़ेगा कि पहले की निस्बत उसकी तबियत संसारी लोगों के संग में और संसारी व्यवहार और कारोबार ग़ैर-ज़रूरी और ग़ैर-मामूली में कम लगती है, और उसके दुनियावी ख़्यालात भी दिन दिन किसी क़दर कम होते जावेंगे और फ़िज़ूल और ग़ैर-वाजिब चाहें और तरंगें दुनिया के भोगों और मुआमलों की भी कम होती जावेंगी, और सतसंग और बानी और बचन में, और भी गुरु और साध और सच्चे मालिक राधास्वामी दयाल के चरणों में, प्रीति और प्रतीति पहले से किसी क़दर ज़्यादा होती जावेगी ॥

७—जो ऊपर की लिखी हुई हालत किसी अभ्यासी सतसंगी को एक या दो वर्ष के अभ्यास के बाद मालूम पड़े तो फिर इस से ज़्यादा और सबूत दया और तरक़्क़ी का क्या चाहिये ? अस्ल मतलब राधास्वामी मत और उस की युक्ति के अभ्यास का यह है कि दुनिया की मुहब्बत और चाह दिन-दिन कम होवे, और मन और सुरत सिमट कर किसी क़दर ऊपर की तरफ़ चढ़ने लगें और अंतर में थोड़ा-बहुत रस लेने लगें, क्योंकि बग़ैर सिमटाव और चढ़ाई के, मन और इन्द्रियों का हालत कभी

नहीं बदल सकती है ॥

८—पर मालूम होवे कि कुल मालिक राधास्वामी दयाल अंतरयामी सब के हाल और ताक़त को खूब जानते हैं, और उन के गृहस्थी कारोबार और रोग़गार की सम्हाल के साथ, जिस क़दर उनकी ताक़त हाज़मे की देखते हैं, उसी क़दर उनके मन और सुरत का सिमटाव और चढ़ाई आहिस्ता आहिस्ता करते हैं। जो कोई जल्दी के वास्ते अर्ज़ या फ़रियाद करे और उस जल्दी में उसके किसी कारोबार का हर्ज या जिस्मानी तकलीफ़ का अंदेशा है, तो ऐसी अर्ज़ या फ़रियाद को फ़ौरन नहीं सुनते। पर आहिस्ता आहिस्ता मुनासिब वक़्त पर उसको बख़शिश ज़रूर देवेंगे, और उसके साथ ताक़त हाज़मे की भी बख़्शेंगे। एकाएक दया होने में आदमी मस्त और बेहोश होकर, और दुनिया के कारोबार और कुटुम्ब-परिवार को बिल्कुल छोड़ कर मजज़ूब (मस्त) फ़क़ीरों के मुवाफ़िक सर-गरदाँ (बे-ठिकाने) फिरता फिरेगा और अपनी आइन्दा की तरक़्क़ी को आप बन्द कर देगा, क्योंकि ऐसी हालत में फिर दुरुस्ती से अभ्यास नहीं बन पड़ेगा, और इस वास्ते तरक़्क़ी बन्द हो जावेगी।

९—बहुत से सतसंगियों को ख़बर भी नहीं है कि पहिला मक़ाम किस क़दर दर्जा बलन्द (ऊँचा) रखता है, यानी कुल बड़े मतों का यह सिद्धान्त पद है और जहाँ से तीन लोक की रचना की कार्रवाई हो रही है और जहाँ पहुँच कर योगी लय हो गये और इधर का होश उनको नहीं रहा। अब बड़ी भारी दया राधास्वामी दयाल की है

कि ऐसे रास्ते और ऐसी युक्ति से अपने सच्चे परमार्थी जीवों को चलाते और चढ़ाते हैं कि जिस में उनके दुनियावी किसी कारोबार में हर्ज भी न होवे और परमार्थ में आला दर्जा सहज में, बे-मालूम, हासिल होता जावे। इसका ज्यादा और मुफ़स्सिल हाल लिखने में नहीं आ सकता, अलबत्ता, कुछ थोड़ा-सा ज़बानी कहा जा सकता है ॥

१०—सच्चे और प्रेमी अभ्यासी को चाहिये कि वह सतसंग में बैठ कर अच्छी तरह से निर्णय और तहक़ीक़ के बचन, इन पाँच बातों के, गौर से सुन कर और समझ कर, अपने मन में भ्रम और सन्देह और शकों को, जिस क़दर जल्दी हो सके, दूर करे, नहीं तो वे अभ्यास में विघ्न डालेंगे और इसके मन और सुरत को सफ़ाई और शौक़ के साथ भजन और ध्यान में लगने नहीं देंगे। और वे पाँच बातें ये हैं :

पहली—निर्णय इस बात का कि राधास्वामी दयाल कुल मालिक और सर्व समर्थ और सच्चे माता-पिता कुल रचना के हैं ॥

दूसरी—यह कि सुरत-शब्द मार्ग सच्चा और पूरा और सहज में धुर पद तक पहुँचाने वाला रास्ता और तरीक़ा अभ्यास का है। इस से बढ़ कर कोई युक्ति या रास्ता रचना भर में नहीं है, और न हो सकता है, क्योंकि और जितने रास्ते हैं, वे सब उन धारों के वसाले के हैं जो माया की हद में ख़त्म हो जाती हैं, और इस सबब

से वे रास्ते, दयाल देश तक नहीं पहुँच सकते। और यह मार्ग जान यानी रूह या सुरत की धार पर सवार होकर चलने का है, और जो कि जान या रूह या सुरत कुल रचना में सब से बढ़ कर जौहर है और सब रचना उसी के आसरे ठहरी हुई है और उसी से हो रही है, इस वास्ते, इस धार से बढ़ कर और कोई धार नहीं है ॥

तीसरी—यह कि मन और इन्द्रियों का ख़मीर माया के मसाले का है, और इस वास्ते उनका असली झुकाव बाहर और नीचे की तरफ़ संसार के भोग और पदार्थों में है। ज़रूरत के मुवाफ़िक़ उनकी कार्रवाई दुरुस्त समझी जाती है, मगर फ़िज़ूल तरंगें और ज़रूरत से ज़्यादा चाहें उठाने में हर्ज और नुक़सान है। इस वास्ते अभ्यासी को थोड़ी-बहुत रोक और सम्हाल अपने मन और इन्द्रियों की, ख़ास कर वक़्त अभ्यास के, बहुत ज़रूर है, नहीं तो भजन और ध्यान का रस जैसा कि चाहिये नहीं आवेगा ॥

चौथी—यह कि दुनिया और दुनिया-परस्तों और धन वालों की मुहब्बत और संग से सच्चे मालिक राधास्वामी दयाल के चरणों के प्रेम में, और भी अभ्यास में, किसी क़दर ख़लल और विघ्न पड़ता है। यह बात हर एक अभ्यासी, ऐसे लोगों का थोड़ा संग करके, अपने अंतर में परख सकता है। इस वास्ते, मुनासिब और ज़रूरी है कि ऐसे जीवों का संग और मुहब्बत उसी क़दर रक्खी जावे कि जिस क़दर ज़रूरी और वाजिब होवे, और ज़्यादा उन

में अपने दिल को बाँधना या अपना वक़्त बे-फ़ायदा उनके संग में या दुनिया की ग़पशप में ख़र्च करना, अभ्यासी को मुनासिब नहीं है। विद्यावान लोग भी, जिनको सच्चा शौक़ किताबों के पढ़ने का है, अपने वक़्त को बहुत सम्हाल कर ख़र्च करते हैं, यानी सिवाय रोज़गार और देह और गृहस्थ के ज़रूरी कामों के, बाक़ी वक़्त अपना नई-नई किताबों और अख़बारों को पढ़ने में ख़र्च करते हैं। फिर परमार्थी अभ्यासी को किस क़दर ख़्याल अपने वक़्त का कि फ़िज़ूल और बे-फ़ायदा ख़र्च न होवे, रखना चाहिये ?

पाँचवीं—राधास्वामी दयाल के चरणों को सच्ची शरण और उनकी मेहर और दया का आसरा और भरोसा ॥

११—जब इन पाँच बातों की सम्हाल थोड़ा-बहुत दुरुस्ती से बराबर जारी रहेगी, तो यक़ीन है कि ऐसे अभ्यासी को मन और माया और दुनिया के विघ्न बहुत कम सतावेंगे और उसका अभ्यास दिन-दिन दुरुस्ती से बनेगा और थोड़े-थोड़े रस और आनन्द के साथ, बढ़ता जावेगा ॥

१२—और मालूम होवे कि अभ्यास में ये सब काम शामिल हैं :—१, सुमिरन करना, २, सुमिरन और ध्यान करना, ३ भजन करना, ४—पोथी का थोड़ा-बहुत समझ समझ कर पाठ करना या सतसंग में बैठ कर सुनना, ५—राधास्वामी मत की चर्चा करना या सुनना, ६—राधास्वामी मत और उसके अभ्यास के ताल्लुक़ की बातों का मन में

बिचार और निर्णय और ख़्याल करना, और ७—अपने मन और इन्द्रियों की चाल की हर रोज़ निरख-परख करते रहना और जिस कदर मुमकिन होवे उनकी सम्हाल रखना ॥

१३—अभ्यासी को बे-फ़ायदा जल्दी इस काम में नहीं करना चाहिए और ग़ौर करना चाहिये कि दुनिया के काम भी, जैसे विद्या सीखना, जल्दी के साथ दुरुस्त नहीं बनते। इस में पन्द्रह और अठारह वर्ष सहज में गुज़र जाते हैं, जब कि विद्यार्थी कुल वक़्त अपना इसी काम में लगाता है, बल्कि घरबार और कुटुम्ब-परिवार से भी जुदा होकर मदरसे में रहना क़ुबूल करता है। फिर यह भारी परमार्थ का काम जब कि सिर्फ़ दो तीन या चार घंटे उसमें दिक़्क़त से लगाये जाते हैं, और बाक़ी वक़्त दुनिया के कामों और दुनियादारों के संग में गुज़रता है, किस तरह ऐसा जल्दी बन सकता है ? बड़ी दया राधास्वामी दयाल की समझना चाहिये कि वे ऐसी थोड़ी मेहनत पर भी अपनी दया करते हैं और सच्चे अभ्यासी को थोड़ा-बहुत अंतर में सहारा थोड़े से दिनों में बख़्शते हैं ॥

बचन छब्बीसवाँ

परमार्थ की ज़रूरत हर एक जीव को, और संतों के उपदेश का सच्चा और पूरा फ़ायदा

१—सब जीवों को, चाहे मर्द होवें या औरत, बराबर ज़रूरत परमार्थी अभ्यास की है, जो कि संतों ने दया करके

ज़ारी फ़रमाया है। यानी जिस वक़्त कि मर्द या औरत बीस-बाईस वर्ष की उमर तक पहुँचे, उसी वक़्त से उसको मुनासिब है कि संतों के उपदेश के मुवाफ़िक़ सुरत-शब्द योग का अभ्यास शुरू करे, और जो कोई काम बाहरमुखी परमार्थी का है (सिवाय इसके कि मालिक के नाम पर जीवों को तन और धन से सुख पहुँचाना) कोई फ़ायदा अंतरी परमार्थ का नहीं दे सकता है ॥

२—बाहरमुखी कामों में सुरत और मन की धार इन्द्रियों के द्वारे बाहर फैलती है, और सुरत-शब्द के अभ्यास में, सुरत और मन की धार, बाहर से सिमट कर अन्दर में ऊपर को अपने भंडार की तरफ़ चढ़ती है। और इस अभ्यास से ज़्यादा ताक़त और सुख मिलता है ॥

३—मालिक ने हर एक जीव में तीन क़िस्म की ताक़तें रक्खी हैं :—एक, देह और इन्द्रियों की ताक़त, दूसरी, विद्या और बुद्धि और मन की ताक़त, तीसरी, चैतन्य सुरत यानी आत्मा या रूह की ताक़त। लेकिन ये ताक़तें जब तक कि मेहनत और शौक़ के साथ साधना और मंथन न किया जावे, तब तक प्रकट नहीं हो सकती हैं यानी जिस किसी ने अपने शौक के मुवाफ़िक, जिस क़ुव्वत के जगाने और उसके काम की तरफ़ तवज्जह सीखने की करी, उसने उसी काम को उसके सिखाने वाले यानी उस्ताद से मिल कर और मेहनत करके सीख लिया, और आहिस्ता-आहिस्ता उस में कामिल हो गया, और उसका फल पाया ॥

४—पहिली ताक़त, देह और इन्द्रियों का साधन है। इसमें बोझ उठाने और हल जोतने से लगा कर उम्दा तसवीर खींचने और लिखने और गाने और बजाने और क़िस्म-क़िस्म की चीज़ें कारीगरी के साथ बनाने और तरह-तरह के तमाशे और चालाकी दिखलाने, जैसे नाचने वाले और नट वग़ैरा दिखलाते हैं, शामिल है। इन सब कामों का नफ़ा या मज़दूरी ज़्यादा से ज़्यादा है, यानी इन कामों के करने वाले सैंकड़ों रुपये महीना पैदा कर सकते हैं। मगर बोझ उठाने वाला और हल जोतने वाला दो, तीन या चार आने रोज़ से ज़्यादा नहीं कमा सकता है॥

५—दूसरी क़ुव्वत मन और बुद्धि की है। यह विद्या या इल्म के पढ़ने से जागती है, और यह इल्म मदरसे में उस्ताद से सीखने और मेहनत करने से हासिल होगा। जो कोई जिस इल्म की तरफ़ शौक़ के साथ तवज्जह करे, वह उसी इल्म को कुछ अर्से में सीख सकता है और इम्तिहान देकर राज-दरबार से बड़े से बड़ा काम पा सकता है, जिसमें वह हज़ारों, लाखों बल्कि करोड़ों आदमियों पर हुक्म चला सकता है और मुल्कों का बन्दोबस्त करता है और हज़ारों रुपये की तनख़्वाह पाता है और बहुत बड़ी इज़्ज़त और हुकूमत उसको मिलती है, और शहरों में नामवरी उसकी होती है, और दुनिया के सब तरह के भोग और विलास उसको आसानी से प्राप्त होते हैं॥

६—तीसरी क़ुव्वत रूहानी यानी चैतन्य सुरत या आत्मा की है। यह ताक़त पूरे और सच्चे परमार्थी गुरु से

मिल कर, और उनका और प्रेमी अभ्यासियों का सतसंग करके, और अपने मालिक के चरणों में मुहब्बत और दुनिया से वैराग करने से और मन और सुरत को साफ़ करके घट में ऊँचे की तरफ़ चढ़ाने से, जागती है। जो कोई अपने मन और इन्द्रियों को रोक कर और सच्चे मालिक और सतगुरु का प्रेम हृदय में धर कर बराबर अभ्यास करे, वह एक दिन अपनी सुरत की ताक़त को जगा सकता है। और फिर बिना उसके माँगे, देशों में उसकी नामवरी फैलती है और दूर-दूर से मर्द और औरतें और लड़के-वाले उसके पास आकर उसकी पूजा और प्रतिष्ठा करते हैं और अपने जीव के वास्ते मुक्ति और नजात हासिल करने के लिए उसको अपना एक बड़ा वसीला समझ कर, उसकी सेवा और ख़िदमत तन, मन और धन से करते हैं। और सिर्फ़ उसकी ज़िन्दगी में ही नहीं, बल्कि बाद चोला छोड़ने के, उसके नाम और निशान की पूजा और अदब कसरत से मुल्कों और देशों में जारी होता है, और हर एक देश के लोग, मर्द और औरतें और लड़के, उसके नाम और उसकी वाणी को गाकर अपना जन्म सफल करते हैं। इस क़िस्म के लोग, अपने-अपने दर्जे के मुवाफ़िक़, संत और साध और औतार स्वरूप और महात्मा और पैग़म्बर और औलिया कहलाते हैं। उनका मालिक आप उनको प्यार करता है और उनकी इज़्ज़त और महिमा और बड़ाई बढ़ाता है, और उनके मत को, जो वे अपने मालिक के हुक्म से जारी करें, दूर-दूर तक फैलता है॥

७—ऊपर के बयान से तीनों कुव्वतों के जगाने वालों का दर्जा और महिमा और बड़ाई और फ़ायदे का हाल ज़ाहिर होता है। अब हर एक जीव को इख़्तियार है कि चाहे वह तीनों क़ुव्वतों को जगावे, चाहे एक या दो को। हर एक क़ुव्वत का दर्जा और फ़ायदा अलेहदा अलेहदा है। पर जिसने रूहानी यानी सुरत या आत्मा की ताक़त को जगाया, वह मालिक के देश में पहुँच कर परम आनन्द को प्राप्त होगा और देहियों और जन्म-मरण के दुखों से बच जावेगा, और इस लोक में भी उसको इस क़दर बड़ा दर्जा ज़िन्दगी में, और भी मरने के पीछे मिलेगा कि जो बादशाहों और राजों और अमीरों और विद्यावानों और बुद्धिमानों को भी नहीं मिल सकता है। और जो इस क़ुव्वत को या विद्या और बुद्धि की क़ुव्वत को नहीं जगावेंगे, तो वे क़ुव्वतें उनकी सोती हुई रहेंगी और न उनको पूरा-पूरा दुनिया का सुख मिलेगा और न परमार्थ का आनन्द हासिल होगा और न दुखों से ही उनका बचाव होगा॥

८—जो कोई सुरत यानी आत्मा की क़ुव्वत को पूरी-पूरी नहीं जगावे तो उसको मुनासिब है कि कुछ मेहनत करके थोड़ा-बहुत इस क़ुव्वत को ज़रूर जगावे ताकि उसको इस दुनिया में भी आराम मिले और परलोक में भी सुख पावे, यानी जो थोड़ी-बहुत मेहनत करके सुरत-शब्द का अभ्यास करता रहे और सच्ची शरण पूरे गुरु और सच्चे मालिक राधास्वामी दयाल की धारण करे, तो वे अपनी मेहर से उसको संसार सागर से बचा कर पार ले जावेंगे और महा सुख का स्थान बख़्शेंगे। और जो इस बचन को नहीं

माने तो उसको इख़्तियार है, पर उसको हमेशा जन्म-मरण भुगतना पड़ेगा और वह, देहियों के साथ ऊँचे-नीचे दर्जे में सदा दुख सहता रहेगा, और आत्मघाती यानी अपने जीव का आप नुक़सान और अकल्याण करने वाला क़रार दिया जावेगा ॥

९—सब मत वाले और कुल जीव कहते हैं कि मालिक हर जगह मौजूद है यानी सर्व व्यापक है, और जो ऐसा है तो वह आदमी और कुल जानदारों में भी मौजूद है। आदमी में मालिक का तख़्त उसके मस्तक यानी दिमाग़ में है और जीव यानी सुरत उसकी अंश है। और जब इसकी बैठक जाग्रत अवस्था में आँखों के मक़ाम में है, तो मालिक का तख़्त ब-हर-सूरत इस स्थान से ऊँचे, मस्तक में होना चाहिए, जहाँ से यह सुरत की धार उतर कर पहिले ब्रह्मांड में और फिर पिंड में आँखों के स्थान पर ठहरी और वहाँ से तमाम देह में पैरों तक, रगों के वसीले से व्यापक हुई ॥

१०—अब समझना चाहिए कि इस सुरत की धार को पहले उसकी बैठक की तरफ़ उलटना और समेटना, और फिर यहाँ से यानी आँखों के ऊपर, अंतर में होकर, उसके भंडार की तरफ़ चढ़ाना, यह काम आत्मा यानी सुरत की क़ुव्वत का जगाना कहलाता है। रास्ते में कई ठेके यानी मक़ाम हैं। सो जितनी दूर तक यानी जिस स्थान तक जो कोई पहुँचा, उसी क़दर उसकी सुरत जागी और उतना ही भेद क़ुदरत और रचना का उसको मालूम हुआ

यानी उस मक़ाम से नीचे का सब हाल उसको मालूम पड़ा। पर जो कोई कि धुर स्थान तक पहुँचा, जहाँ से कि आदि में सुरत का ज़हूर हुआ और वहाँ से नीचे नीचे रचना होनी शुरू हुई, उसको कुल भेद क़ुदरत का मालूम हुआ। और उसी को दर्शन परम भंडार यानी कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल का हासिल हुआ। और उसी का नाम परम संत और परम गुरु है और वही परम आनन्द को प्राप्त होकर अमर और अजर हो गया। और उसी की नर देह सफल हुई, यानी उसी ने अपनी चैतन्य शक्ति पूरी पूरी जगाई।

११—अब मालूम हो कि यह काम सुरत-शब्द मार्ग के अभ्यास से हो सकता है, यानी सुरत को, जिस धार पर कि यह सवार होकर उतरी है, उसी धार के वसीले से चढ़ाना और वही धार जान और अमृत और रूह और शब्द की धार है क्योंकि जहाँ धार रवाँ (जारी) है, वहीं आवाज़ भी संग है। उस आवाज़ का, जैसे जैसे कि वह हर एक स्थान से प्रकट हुई, भेदी से भेद लेकर, उसी आवाज़ की डोरी को पकड़ कर यानी सुरत से तवज्जह के साथ उस आवाज़ को सुनते हुए, ऊपर को यानी उसके भंडार की तरफ़ चलना सुरत-शब्द योग का अभ्यास कहलाता है। और यह सिर्फ़ संत मत में जारी है, यानी उसका मुफ़स्सिल भेद आज-कल राधास्वामी मत में मिल सकता है। और किसी मत में भेद और चलने की युक्ति का ज़िक्र भी नहीं है। सिर्फ़ इशारे में इस क़दर महिमा शब्द की लिखी है कि

आदि में शब्द प्रकट हुआ और शब्द ही कर्ता है और शब्द ही मालिक का स्वरूप है। पर इसका भेद कि किस तरह से शब्द से रचना हुई और कैसे शब्द मालिक का स्वरूप है और किस तरह उसकी डोरी पकड़ के आदि यानी धुर स्थान तक, जहाँ से कि उसका अव्वल ज़हूर हुआ, पहुँचना हो सकता है, और वह धुर स्थान कहाँ है, कुछ नहीं लिखा है, और न कोई मत वाला इस भेद का जानकार है। इस सबब से, सब के सब पोथियों और मज़हबी किताबों के पढ़ने और पढ़ाने और बाहर की पूजा और रस्मों के चलाने में अटक गये। और जो थोड़े-बहुत विद्या और बुद्धिवान थे, वे अपने आप को ब्रह्म यानी चैतन्य समझ कर चुप हो रहे। और इस सबब से सच्चा उद्धार यानी सच्ची मुक्ति किसी की भी नहीं हुई और न होती है॥

बचन सत्ताईसवाँ

जवाब थोड़े से सवालों के, जो एक सतसंगी ने भेजे

१—सत्तपुरुष से जोत-निरंजन दो कलायें प्रकट हुईं और यह दोनों कलायें चैतन्य हैं और इन्हीं ने तीनों लोकों की रचना करी—पहले ब्रह्म सृष्टि और बाद उसके और क़िस्म की रचना यानी सुर, नर और चारों खान। और यह रचना तीन धारों से प्रकट हुई और यह तीन धारें ब्रह्म और माया से, मक़ाम सहसदल कंवल से निकलीं और वे

तीन गुण कहलाते हैं। सहसदल कंवल तक माया, चैतन्य और निहायत लतीफ़ है। सहसदल कंवल और तीन गुणों के मंडल के नीचे जड़ता शुरू हुई और जिस क़दर उतार नीचे होता गया, कसाफ़त यानी जड़ता बढ़ती गयी। सबब इसका यह है कि सत्तलोक तक निर्मल चैतन्य देश है, और उसके नीचे हल्की तह चैतन्य पर थी। सो जब ऊपर से धार आई, उसने उस तह को, और निर्मल चैतन्य को जुदा करके रचना करी। और वह ग़िलाफ़ या ख़ोल जो अलेहदा हुआ, उससे नीचे की रचना की देह ज़ाहिर हुई। और इसी तरह हर मक़ाम से ग़िलाफ़ या ख़ोल, जो कि ब-निस्बत ऊपर के ज़्यादा मोटा होता गया, ख़ारिज करके नीचे को गिरा दिया गया और निर्मल चैतन्य अलेहदा कर लिया गया, और उसी ग़िलाफ़ या ख़ोल के मसाले से नीचे की रचना की देह ज़ाहिर होती गई। ग़रज़ कि इस मक़ाम पर, जहाँ कि इन्सानी और उससे भी नीचे की रचना है, ग़िलाफ़ ज़्यादा मोटा था और वह ब-वजह इस मोटाई के, महज़ जड़ हो गया जैसे कि किसी दरख़्त पर बहुत चमड़ी जो चढ़ी होती है, वह कुछ अर्से बाद ख़ुश्क होकर गिर जाती है और उसमें तरी बिल्कुल नहीं रहती है, यही हाल नीचे बढ़ता गया॥

२—रचना के अर्से की कुछ तादाद नहीं है और न उसका शुमार मुमकिन है। जो शुमार पुराणों और दूसरी किताबों में लिखा हुआ है, सिर्फ़ इसी सूरज मंडल या उसके ऊपर के सूरज का है, और इसी सूरज मंडल को

पैदा हुए, मुवाफ़िक़ इल्म सितारों के, बे-शुमार वर्ष गुज़र गए हैं। और संत फ़रमाते हैं कि एक सूरज मंडल के नीचे दूसरा, और दूसरे के नीचे तीसरा–इसी तरह रचना होती चली आई है। यानी पहला सूरज मंडल, दूसरे मंडल के सूरज का, जो उसके नीचे है, एक तारा है। अब दराज़ी और वसअत (विस्तार) रचना का ख़्याल करो कि क़यास काम नहीं करता और हर एक मैदान में बे-हिसाब रचना है। मैदान से मुराद हर एक मंडल के घेर से है। सो हर एक मंडल में ऊपर से नीचे तक बराबर रचना होती चली आई है। ऊपर की रचना, नीचे की ब-निस्बत, ज़्यादा से ज़्यादा निर्मल और रोशन है, जैसे इस लोक की हवा के मंडल में बहुत से दर्जे लताफ़त और सर्दी के हैं और पहाड़ पर चढ़ने से इन दर्जों की ख़बर पड़ती है, या अपने मकान के ऊपर के खनों पर चढ़ने से तफ़ावत हवा का मालूम होता है, इसी तरह रचना में मंडल हैं, और उनकी रचना में ऊपर और नीचे के हिसाब से तफ़ावत और फ़र्क़ है। सब से ऊपर जो देश है, वह निर्मल-चैतन्य और ऐन रूहानी है, और वहाँ मिलौनी खोल या तह की नहीं है। और इसी वजह से वहाँ माया के मसाले की बनी हुई देह नहीं है (और माया के मसाले के बड़े जुज़ पाँच तत्व और तीन गुण हैं) और इसी सबब से वह परम आनन्द और सरूर का मक़ाम है और जन्म-मरण और तकलीफ़ देह की वहाँ नहीं है। वहाँ पहुँचना सुरत का, सब मंडलों को फोड़ कर वास्ते हासिल करने सच्ची और पूरी मुक्ति के, ज़रूर है। और यह काम सुरत-शब्द

योग के अभ्यास से बन सकता है, और किसी तरह से मुमकिन नहीं है, क्योंकि शब्द की धार धुर से आई है, और उस पर सवार होकर ही धुर मकाम तक पहुँचना मुमकिन है। और बाक़ी धारें जो रचना में आई हैं, वे किसी न किसी नीचे के मक़ाम से पैदा होकर उतरी हैं। उन धारों को पकड़ कर अभ्यासी उस मक़ाम तक पहुँच सकता है कि जहाँ से वे धारें निकली हैं और उस मक़ाम के ऊपर यानी धुर स्थान तक किसी और तरह से नहीं जा सकता है ॥

३—ऊपर के हाल से फ़र्क़ और तफ़ावत रचना का, एक दर्जे और सब दर्जों में समझ लो। यह ब-सबब मिलौनी खोल यानी माया के हुआ है और इस तफ़ावत से कर्त्ता की ज़ात पर किसी तरह का दोष नहीं आ सकता है, क्योंकि निर्मल चैतन्य देश में सत्तलोक और अलख लोक और अगम लोक की रचना में किसी तरह का फ़र्क़ और तफ़ावत नहीं है, और नीचे के लोकों में जहाँ से कि माया का ज़हूर हुआ, थोड़ा-थोड़ा फ़र्क़ और तफ़ावत पैदा होता गया और नीचे के मंडलों में ज़्यादा बढ़ता गया। यह रचना, जो सत्तलोक के नीचे हुई है, ब्रह्म और माया की करी हुई है, यानी ब्रह्म ने सत्तपुरुष से, सेवा करके, इजाज़त लेकर यह रचना करी है। सो, माया और ब्रह्म की निस्बत अलबत्ता इस क़दर इल्ज़ाम लगाया जा सकता है कि इन्होंने जीवों को सत्तपुरुष का भेद नहीं दिया, और वास्ते बढ़ाने और क़ायम रखने रचना के, अपनी हद में, अनेक तरह के धोखे दे कर, जीवों को अपनी अमलदारी में रक्खा, और अनेक

मत जारी करके उनको भ्रमा और भुला दिया। इसी वजह से संत फ़रमाते हैं कि ब्रह्म देश के पार जाना चाहिये। इस कर्ता का स्वरूप किसी क़दर नाक़िस है यानी ब-सबब संगत माया के, सफ़ाई कामिल इस में नहीं है। इसी सबब से इसकी रचना में भी कसर है। इस तीन लोक की रचना की उम्र है यानों हद मुक़र्रर है, जैसे कि आदमी की उम्र है। यह सदा एक-रस नहीं रहेगी। इसी वजह से संत कहते हैं कि इस देश में जन्म-मरण से से बचाव नहीं होगा। इस वास्ते ज़रूर है कि ब्रह्म देश के पार जाना चाहिये।

४—इस लोक की हद इस सूरज मंडल के ताल्लुक़ है, यानी यह सूरज मंडल जहाँ तक कि है, वहाँ तक इस दर्जे की रचना की हद है। मगर वह रचना जो नीचे की तरफ़ है, वह इस लोक की रचना से भी कम दर्जे की है। और इसी तरह नीचे के दर्जात में और ज़्यादा कमी ताक़त की होती गई है, और सबसे नीचे रचना नहीं है। वहाँ इस क़दर कसीफ़ खोल चैतन्य पर चढ़े हुए हैं कि कसीफ़ से कसीफ़ रचना भी वहाँ नहीं हो सकती। वह जगह ब-तौर ख़ाली मैदान के पड़ी है। वहाँ रचना किसी वक़्त में भी नहीं होगी, मगर तादाद उसके फ़ासले और वसअत की कुछ नहीं कही जा सकती, क्योंकि अगर महा संख को एक अदद तजवीज़ करके शुमार किया जावे, तो भी हिसाब नहीं लग सकता। वहाँ गिनती का शुमार नहीं हो सकता है, और न इस तादाद के जानने की कुछ

ज़रूरत है। मनुष्य को अपने उद्धार यानी ऊपर को चढ़ने का फ़िक्र करना चाहिये और रचना के हिसाब में, जो कि बे-शूमार है, ज़्यादा पड़ना बे-फ़ायदा है। सिर्फ़ ख़ास क़ायदे को जान लेना चाहिये, और जोकि क़ानून क़ुदरत का सब जगह एकसाँ है। उसको समझ कर सब जगह की चाल का अनुमान करके, अपने मन को तसल्ली देकर, अपने ख़ास काम को, जो कि अपने जीव का कल्याण है, शुरू करना चाहिये।

५—अजपा जाप यानी सोहं शब्द से स्वाँसा से सुमिरन का, ऊपर के दर्जे के सोहं से, कुछ ताल्लुक नहीं है और इस अभ्यास की रसाई किसी मक़ाम पर नहीं है। इससे सिर्फ़ थोड़ी सफ़ाई हो सकती है॥

६—यह भारी दलील आवागवन की है कि जब तक निर्मल चैतन्य देश में सुरत पहुँचेगी, तब तक किसी न किसी क़िस्म के खोल में रहेगी और वह खोल या ग़िलाफ़ उसकी देह समझना चाहिए। और जन्म-मरण ग़िलाफ़ का है, न कि सुरत या रूह का। फिर सुरत जो एक देह को छोड़ती है तो ज़रूर दूसरी देह उसको धरनी पड़ती है, चाहे इस लोक में चाहे ऊँचे या नीचे लोक में। और जिन मतों में आवागवन नहीं मानते हैं, उनसे पूछना चाहिये कि बहिश्त और ऐराफ़ और जहन्नुम में ये रूहें कौन और किस किस्म की देह रख कर दुख-सुख पावेंगी। इस बात का जबाब वे साफ़ तौर पर नहीं दे सकते हैं, क्योंकि सुरत तो, बग़ैर देह के, ऐन आनन्द स्वरूप है।

उसको किसी मूरत में दुख-सुख नहीं हो सकता है, और दुख-सुख भोगने के वास्ते देह का होना ज़रूर है। और रूह या सुरत, जब बहिश्त और ऐराफ़ और दोज़ख में, जो तीन मक़ाम जुदा इस लोक से हैं, जाती है और वहाँ दुख-सुख भोगती है तो कोई न कोई देह में ज़रूर उसकी बैठक होगी। तो इस लोक की देह से उस देह में उन स्थानों में जाना आवागवन को साबित करता है। और इल्म नजूम पढ़ने से बहुत सा हाल रचना का कि किस तौर से शुरू हुई और किस क़दर अर्से (काल) दराज़ से चली जाती है, मालूम हो सकता है और उससे किसी क़दर अनुमान ऊँचे की रचना का हो सकता है ॥

७—जीव यानी सुरत सत्तपुरुष राधास्वामी की अंश है, जैसे सूरज और सूरज की किरन। रचना से पेश्तर, यह सत्तपुरुष राधास्वामी के साथ अभेद थी। जब सत्तलोक की रचना के नीचे सत्तपुरुष के चरणों में प्रथम अंश, निरंजन, यानी काल पुरुष प्रकट हुआ और उसने वास्ते करने तीन लोक की रचना के, सत्तपुरुष से सेवा करके आज्ञा माँगी, और उसको इजाज़त दी गई, और वह अकेला रचना न कर सका, तब उस वक़्त, आद्या को (जो दूसरी अंश सत्तपुरुष की है) प्रकट करके, और उसको बीजा जीवों यानी सुरतों का हवाले करके, निरंजन के पास भेजा गया और इन दोनों अंशों ने मिल कर रचना तीन लोकों की करी ॥

८—त्रिकुटी के मक़ाम से माया प्रकट हुई और यह ग़ुबार रूप यानी परमाणु स्वरूप थी। और यह माया, असल

में, एक ग़िलाफ़ या तह थी जो चैतन्य पर दसवें द्वार के नीचे बतौर दूध पर मलाई के चढ़ी हुई थी। जब वे दोनों धारें, यानी निरंजन और आद्या यानी जोत, इस मक़ाम पर आईं, तब वह तह अलेहदा की गई और वह ग़ुबार यानी परमाणु स्वरूप होकर फैली। और इन तीनों की मिलौनी से निहायत सूक्ष्म धारें तीन गुण सत, रज, तम की, त्रिकुटी से अरूप प्रकट हुईं, और सहसदल कँवल के स्थान से जो त्रिकुटी से नीचे है, यह धारें स्वरूपवान प्रकट हुईं और पाँच तत्व भी प्रकट हुए और ये तत्व और गुण माया के मसाले के बड़े अंश हैं ॥

६—अब मालूम होवे कि त्रिकुटी को ब्रह्म पद कहते हैं और सहसदलकँवल के धनी यानी मालिक को ईश्वर कहते हैं। और इस स्थान से सुरत यानी जीव की धार, और मन और माया की धार, जुदा-जुदा प्रकट होकर नीचे उतरी और तीन लोकों की रचना हुई। जिन मतों की रसाई यहाँ तक हुई (और असल में सब मत इसी स्थान तक ख़त्म हो गये), उनको इसके ऊपर का हाल मालूम न हुआ। इस वास्ते उन्होंने ईश्वर व जीव और माया (यानी परमाणु) को अनादि कहा। पर संत-मत के मुवाफ़िक़ माया और उसके परमाणु की आदि त्रिकुटी से हुई और सुरत, सत्तपुरुष राधास्वामी के स्थान से आई और ईश्वर भी, यानी निरंजन, सत्तपुरुष से प्रकट हुआ। फिर यह सब किस तरह अनादि हो सकते हैं क्योंकि सत्तलोक और उसके ऊपर के स्थानों में इनका वजूद और निशान भी नहीं है ?

१०—सुरत का बीजा आद्या की मारफ़त एक ही बार सत्तलोक से आया। अब बार-बार सुरतें वहाँ से नहीं आती हैं ॥

११—निरंजन यानी काल अंश एक ही दफ़ा वहाँ से आया। अब वह उलट कर वहाँ नहीं जा सकता है।

१२—संतों के मत के मुवाफ़िक़ प्रलय के वक़्त में त्रिकुटी का स्थान भी सिमट जावेगा और उस वक़्त ईश्वर और जीव यानी सुरत और माया (मय अपने मसाले तीन गुणों और पाँच तत्वों के) दसवें द्वार में समा जावेंगी और उनका रूप जो उस मक़ाम के नीचे ज़ाहिर हुआ है, अपने-अपने भंडार में लय हो जावेगा ॥

———

बचन अट्ठाईसवाँ

रचना का वर्णन कि आदि में कैसे हुई

१—आदि में जब किसी क़िस्म की रचना नहीं हुई थी, तब अनामी पुरुष था और उसका स्वरूप अंडाकार था। स्वरूप के कहने से कोई आकारी रूप नहीं समझना चाहिए। यह स्वरूप अपार, अनंत, अकह, अनादि और अरूप था। उसका एक हिस्सा ऊपर का निर्मल यानी नूरानी या प्रकाशवान था और बाक़ी नीचे की तरफ़ वह दर्जे-ब-दर्जे तहों या ग़िलाफ़ों से ढका हुआ था। इस तौर, से जहाँ कि तह या ग़िलाफ़ शुरू हुआ, वहाँ से जिस क़दर प्रकाशवान

हिस्से से दूरी होती, गई, उसी क़दर नीचे की तह या ग़िलाफ़ भारी या मोटी होती गई। इस हालत में यह तह या ग़िलाफ़ कोई दूसरी चीज़ नहीं समझी जा सकती है। उसकी क़ैफ़ियत ऐसी थी जैसे कि दूध के ऊपर मलाई। हर-चन्द कि मलाई दूसरी चीज़ नहीं है, मगर वह दूध नहीं हो सकती। वह उसका ग़िलाफ़ या खोल होकर रहती है। और फिर उस मलाई में भी दर्जे होते हैं, जैसे निहायत बारीक और फिर मोटी और ज़्यादा मोटी वग़ैरा॥

२—जिस वक़्त कि अनामी पुरुष का यह स्वरूप था, उस वक़्त जो अंग उसका कि नूरानी हिस्से से नीचे निहायत बारीक तह से ढ़का हुआ था, उसकी कशिश नूरानी हिस्से की तरफ़ जारी थी। जैसे जब किसी बर्तन में घी भर कर ऊपर का हिस्सा उसका रोशन कर दिया जावे तो उसके नीचे के घी की दौड़ रोशन घी की तरफ़ होती है और उस नीचे के हिस्से के घी की तह या ग़िलाफ़ धुआँ रूप होकर जुदा हो जाती है, ऐसे ही जो नीचे का हिस्सा कि रोशन और प्रकाशवान हिस्से से मिला, उसी वक़्त उसकी तह जुदा होकर नीचे की तरफ़ गिर गई, और वह हिस्सा भी रोशन हिस्से से मिलकर रोशन हो गया। फिर उस रोशन हिस्से से मौज यानी धार प्रकट हुई और नीचे उतर कर किसी क़दर फ़ासले पर ठहरी। और वहाँ उसने उस देश के चैतन्य से तह या ग़िलाफ़ को अलेहदा करके नीचे की तरफ़ गिरा दिया, और जो रोशन रूप बरामद हुआ, उसको अपने रूप में मिला लिया। और

फिर उसका मंडल बढ़ता गया यानी सब तरफ़ से ग़िलाफ़ वाला चैतन्य रोशन चैतन्य की तरफ खिंच कर, और उससे मिलकर रोशन होता गया। और इसी तरह उस मंडल में फिर कार्रवाई रचना की जारी हुई, और जो ग़िलाफ़ कि ऊपर से उतर कर नीचे गिरा था, उसके मसाले से उस रचना की रूहों की देह बनाई गई। जब उस मंडल की सब रचना हो गई और उस पर कुछ अर्सा गुज़र गया, तब उस मक़ाम से, पहिले दस्तूर के मुवाफ़िक़, नई धार या मौज प्रकट हुई। और इसी तरह से नीचे उतर कर किसी क़दर फ़ासले पर ठहरी, और वहाँ से ग़िलाफ़दार चैतन्य की तह को हटा कर नीचे गिराया और नूरानी स्वरूप जो बरामद हुआ, उसको अपने से मिला कर ब-दस्तूर मंडल बाँधा और रचना करी। यानी ऊपर से उतरे हुए ग़िलाफ़ या तह का जो मसाला था, उससे इस मंडल की रूहों की देह तैयार करी। और यही देह उनका ग़िलाफ़ होती गई। यह दोनों मंडल अगम लोक और अलख लोक कहलाते हैं और और इनके मालिक अगम पुरुष और अलख पुरुष हैं।

३—इसी तरह से अलख लोक से धार उतर कर नीचे आई और सत्तपुरुष रूप होकर सत्तलोक रचा और फिर उस लोक की रचना करी। यह तीनों मक़ाम और उनकी रचना उस हिस्से अनामी पुरुष में रची गई कि जो सदा प्रकाशवान और निर्मल चैतन्य के क़रीब नीचे था और जहाँ की तह बहुत बारीक थी, जैसे कि शँतरे की फाँक के ज़ीरे का ग़िलाफ़ होता है। और वह तय या ग़िलाफ़ और उसका

मसाला भी ऐन नूरानी और चैतन्य स्वरूप था, यानी अनामी पुरुष के नूरानी अंग के स्वरूप में और उस तह के रूप में बहुत कम भेद या फ़र्क़ था, यानी वह भी वहाँ के नूरानी चैतन्य के मुवाफ़िक़ नूरानी थी और इसी सबब से उस चैतन्य का ग़िलाफ़ होकर रही। और जब रूहों की जुदा जुदा रचना हुई, तब उसी तह या ग़िलाफ़ के मसाले से उन रूहों की चैतन्य यानी रूहानी खोल या देह तैयार हुई ॥

४—सत्तलोक के नीचे जो ग़िलाफ़दार चैतन्य था, वह किसी क़दर काले रंग का था। जब उसकी कशिश सत्तलोक की तरफ़ हुई तो उसका ग़िलाफ़ दूर होकर नीचे को गिराया गया। पर वह इस क़ाबिल न था कि सत्तलोक के चैतन्य के साथ तद्रूप हो जावे। इस वास्ते वह सत्तलोक के नीचे के अंग से, किसी क़दर श्याम रंग की नूरानी धार का रूप होकर प्रकट हुआ, और वह धार नीचे की तरफ़ दिन दिन बढ़ती गई और किसी क़दर फ़ासले पर सत्तपुरुष के सन्मुख ठहरी। इसी धार का नाम निरंजन और काल पुरुष है। इसी ने कुछ अरसे के बाद सत्तपुरुष से दरख़्वास्त की कि मुझको हुक्म और इख़्तियार सत्तलोक के मुवाफ़िक़ रचना करने का मिले, और वहाँ मैं तुम्हारा ध्यान करता रहूँ। सो उसकी ऐसी ख़्वाहिश देख कर सत्तपुरुष ने उसको इजाज़त दी कि वह नीचे के देश में जाकर रचना करे।

५—तब, यह निरंजन की धार उतर कर नीचे आई

और उसने चाहा कि रचना करे। पर उसकी ताक़त ऐसी न थी कि तनहा (अकेला) कार्रवाई कर सके। फिर उसने सत्त-पुरुष के चरणों में अर्ज़-ए-हाल किया। तब वहाँ से दूसरी धार पीले रंग की, जो कि ऐन चैतन्य थी और सुरत यानी रूहों का बीज उसमें मौजूद था, नीचे उतारी गई। इसका नाम आद्या या ज्योति हुआ॥

६—जिस स्थान पर यह दोनों धारें आकर पहिले ठहरीं, उसका नाम सुन्न यानी दसवां द्वार है। वहाँ पर इनका नाम पुरुष और प्रकृति हुआ और यही स्थान निर-मल सुरत का प्रथम ठेका है॥

७—फिर ये दोनों धारें उतर कर नीचे के मक़ाम पर, जिसको त्रिकुटी कहते हैं, ठहरीं, और वहाँ इनका नाम माया और ब्रह्म हुआ। क्योंकि दसवें द्वार के नीचे के चैतन्य पर ग़िलाफ़ किसी क़दर मोटा यानी दूना था—एक तह (या ग़िलाफ़) पहिली तह के मुवाफ़िक़, और दूसरा ज़्यादा स्थूल। और जब वह तह या ग़िलाफ़ अलेहदा किया गया और ऊपर से दोनों धारें उतरीं, तब इस ग़िलाफ़ का मेल करके उनका नाम ब्रह्म और माया हुआ और इन दोनों की मिलौनी से तीन धारें अति सूक्ष्म और गुप्त यहाँ से जारी हुईं। यहाँ माया का रूप भी चैतन्य और लतीफ़ और निरंजन का रूप भी चैतन्य और लतीफ़ यानी सूक्ष्म है॥

८—फिर मक़ाम त्रिकुटी से दोनों धारें उतर कर सहस दल कँवल में आकर ठहरीं। और यहाँ इनका नाम

जोत-निरंजन और शिव-शक्ति हुआ। ब्रह्मांड में, ब्रह्म सृष्टि की रचना इन्होंने करी। यहाँ पर निरंजन-जोत का स्वरूप जुदा २ प्रकट हुआ और ये दोनों चैतन्य और निहायत लतीफ़ यानी सूक्ष्म स्वरूप हैं। इस मक़ाम से तीनों गुणों की धारें यानी सत, रज और तम जिनको ब्रह्मा, विष्णु और महेश कहते हैं, और पाँच तत्व सूक्ष्म यानी पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन और आकाश ज़ाहिर हुए। इन आठों से मिलकर, चैतन्य पुरुष और माया ने, तीन लोक की रचना करी यानी देवता, असुर और चार खान के जीव (जेरज, अंडज, सेदज और और उषमज) जिनमें मनुष्य, चौपाये, परिन्द और कीड़े-मकोड़े और अनेक क़िस्म के दरख़्त और बनस्पति और खानें शामिल हैं, पैदा किये, और सूरज और चाँद और ज़मीन और आसमान रचे गये॥

९—अब समझना चाहिये कि सहसदलकंवल के नीचे प्रकट कार्रवाई तीन धारों की हैं।

पहली, चैतन्य की धार जो सतपुरुष राधास्वामी की अंश है और यहाँ अनेक जिस्मों में जीव-चैतन्य या सुरत कहलाती है और कार-फ़र्मा यानी कर्त्ता यही है।

दूसरी, निरंजन यानी काल पुरुष की धार जो कि मन रूप होकर, हर एक जिस्म में सुरत की ताक़त से कार्रवाई करती है।

तीसरी, माया की धार जो कि देह और इन्द्रिय रूप होकर सुरत और मन का ग़िलाफ़ हो रही है। नीचे के देश में माया की तह यानी का ग़िलाफ़ और उसका मसाला

जो तीन गुणों और पाँच तत्वों में स्थूल और ज़्यादा स्थूल होता गया है) मलीन से मलीन होती गई, और इसी सबब से इन देशों में रचना भी निहायत स्थूल और मलीन है ॥

१०—ऊपर के बयान से मालूम होगा कि ब्रह्म और माया, यानी ब्रह्मांडी मन और उसकी शक्ति, जिसको ख़ुदा और परमेश्वर और सिफ़त यानी माया कहते हैं, सत्तलोक के नीचे से पैदा हुई, और इन्ही के अक्स नीचे के देश यानी पिंड में, मन और इच्छा कहलाये, और ये दोनों, पिंड देश में, सुरत चैतन्य की शक्ति से, जो सत्तपुरुष की निज अंश हैं, चैतन्य है और अपनी २ क़ारवाई करते हैं।

११—मालूम होवे कि पहला ग़िलाफ़ या तह जो चैतन्य पर सत्तलोक के नीचे चढ़ा हुआ था, वह निरंजन रूप हुआ और उसका रुख़ या मुख बाहर की तरफ़ है और हमेशा चैतन्य का ग़िलाफ़ रहता है। बिकुटी में इसका नाम ब्रह्मांडी मन है। और इसी तह से सहसदल-कँवल के नीचे से मन पैदा हुआ, जिसका रुख़ भी ब-दस्तूर बाहर की तरफ़ है, और इस लोक यानी पिंड की रचना में सुरत-चैतन्य का ग़िलाफ़ हो रहा है। दूसरी तह जो चैतन्य पर दसवें द्वार के नीचे चढ़ी हुई थी, वह चैतन्य-माया हुई, और ब्रह्म-सृष्टि की रूहों की देह का मसला उस ही से निकला। और इसी तरह सहसदल-कँवल के नीचे जीवों की देह का मसाला वहाँ की माया से पैदा हुआ। और ऐसे ही जिस क़दर, नीचे से नीचे, रचना होती गई, पहली और दूसरी तह मोटी होती गई और

उसमें दर्जे हो गये, यानी मन और माया का मसाला स्थूल से स्थूल और मलीन से मलीन होता चला गया ॥

बचन उन्तीसवाँ

राधास्वामी मत क्या है और उसके अभ्यास सुरत-शब्द मार्ग का फल क्या है

१—राधास्वामी मत, सच्चे कुल मालिक और उसके निज धाम का भेद समझ कर, सुरत को, अपने सच्चे मालिक और निज माता-पिता के चरणों में, जहाँ से यह आदि में उतर कर आई, पहुँचने का रास्ता बताता है और उस रास्ते पर चलने की युक्ति का उपदेश करता है ॥

२—यह सुरत अपने धाम से जुदा होकर त्रिलोकी में माया और काल के जाल में फँस कर, और पिंड के बंदी-ख़ाने में क़ैद होकर और मन और इन्द्रिय और उनके भोगों के संग लिपट कर, इस लोक में सब तरह के दुख, सुख और संताप सह रही है। इस वास्ते राधास्वामी मत, इसके दुख हमेशा को दूर करने के लिये, सच्चे मालिक राधास्वामी दयाल की सर्व-समरत्थता और मेहर और दया की महिमा सुना कर चरण-शरण दृढ़ कराता है, जिसके सबब से चलने वाली सुरत को उस रास्ते के तै करने में बहुत आसानी होती है, और चाल सुखाली चलती है, और दया और मेहर संग रहती है, और काल और माया के विघ्न सहज में दूर

होते हैं। यह मत क़ुदरती है, यानी इसमें सच्चे मालिक के मिलने का सच्चा रास्ता, क़ुदरत के क़ायदे के मुवाफ़िक़ समझाया जाता है, यानी जैसे कि आदि में, जब प्रथम सुरत के उतार के साथ रचना शुरू हुई, उसी तरह और उसी रास्ते से, सुरत का उलटाव यानी चढ़ाई की युक्ति बताई गई है। और यह हाल हर एक जीव के मरने के वक़्त होता है कि उसकी रूह की धार का खिंचाव पैरों की उँगलियों से शुरू होकर आँखों की पुतलियों के खिंचाव तक आँख से नज़र आता है, और इसी खिंचाव के साथ ताक़त देह और इन्द्रियों की घटती और खिंचती हुई मालूम होती है। इसी तरह से, अभ्यास के वक़्त, सुरत-शब्द मार्ग के अभ्यासी की सुरत और मन का उलटाव और खिंचाव, ऊपर की तरफ़, स्वतन्त्रता के साथ होता जावेगा और जो अभ्यास दुरुस्ती से, शौक़ के साथ बनता चला गया तो एक दिन वह अभ्यासी मौत के मक़ाम पर पहुँच कर उसको जीत लेगा। और जिस किसी से इस क़दर अभ्यास न बना, तो भी वह बहुत दूर तक अपना रास्ता आख़ीर वक़्त पर चलने का साफ़ करके बहुत से संसारी दुख-सुख और मौत की तकलाफ़ से अपना बचाव कर सकता है॥

३—यह रास्ता और युक्ति किसी आदमी की बनाई हुई या निकाली हुई नहीं है। इसका उपदेश और भेद सच्चे मालिक ने आप संत सतगुरु रूप धार कर जीवों पर अति दया करके प्रकट किया॥

४—जो कोई इस मत में शामिल हुआ और सुरत-

शब्द का उपदेश लेकर उसके अभ्यास में लगा, तो उस को सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल का दामन या चरण पकड़ा दिया गया, क्योंकि धुर मुक़ाम से शब्द की धार हर एक रास्ते के मक़ाम से होकर बराबर नीचे तक, जहाँ कि पिंड में सुरत की बैठक है और जहाँ बैठ कर यह सुरत, देह और संसार के साथ कार्रवाई करती है, जारी है। और जिसको उस धार का, और उन धुनों, यानी आवाज़ों का, जो उन धारों के साथ हो रही हैं, भेद मिला और मन और सुरत को उस धुन के संग लगा कर चढ़ाने की युक्ति बताई गई, तो उस सुरत को धुन के वसीले से सच्चे मालिक के चरणों के साथ मेल करने और उनको पकड़ कर चढ़ने का क़ायदा मालूम हो गया, और वह उसी दस्तूर के मुवाफ़िक़, जब चाहे जब चरणों के साथ लिपट कर उसका रस और आनन्द ले सकती है और उसी धार को पकड़ कर आहिस्ता २ अभ्यास करके, धुर मक़ाम तक पहुँच सकती है ॥

५—ऊपर के लिखे हुए से साफ़ मालूम होगा कि राधास्वामी मत का मतलब यह है कि सुरत को दुख-सुख और जन्म-मरण के स्थान से हटा कर, उसके निज घर में, जो महा सुख और परम आनन्द का भंडार है, पहुँचाना, यानी पिंड और ब्रह्मांड से, जो कि काल और माया का देश है, निकाल कर संतों के दयाल देश यानी निर्मल चैतन्य देश में पहुँचाना, ताकि काल क्लेश से बच कर दयाल देश में सदा का आनन्द यानी अमर सुख पावे और आप भी अमर हो जावे ॥

६—बर-ख़िलाफ़ इसके, और मतों का, जो दुनिया में जारी हैं, यह हाल है कि जीवों को इसी देश के किसी ऊँचे, नीचे और मध्य स्थान में रख कर, कभी सुख और कभी दुख के चक्कर में डाले रक्खें, और जन्म-मरण की फाँसी काटी न जावे, बल्कि उनको पूरा भेद रचना का और पता सच्चे मालिक और उसके सच्चे देश का मालूम भी नहीं हुआ। इसी सबब से, वे काल और माया देश के पार का हाल बयान नहीं करते, और न उसके पार जाने की युक्ति समझाते और बताते हैं। इसका हाल इस दृष्टान्त से, जो नीचे लिखा जाता है, साफ़ २ मालूम होवेगा ॥

७—दृष्टान्त-जैसे पानी असल में गैस रूप था और फिर हवा रूप और बादल रूप और बुख़ार रूप से पानी रूप होकर बर्सा और फिर जम कर बर्फ़ रूप होकर जड़ यानी बे-हिस्स और हरकत हो गया, और जब उसको गर्मी पहुँचाई गई, तब फिर पानी रूप और बुख़ार यानी भाप रूप और बादल रूप और हवा रूप होकर फिर गैस रूप होकर गुप्त हो गया, और ऊँचे से ऊँचे देश में, जहाँ उस का पहले वासा था, जाकर ठहरा ॥

८—अब समझना चाहिए कि संत सतगुरु का मत यानी राधास्वामी मत, बर्फ़ रूप को उस के असली घर में पहुँचा कर, गैस रूप बनाने की युक्ति बताता है कि जिस से वह तोड़-फोड़ और ख़ुश्की और गरमी और पाकी और ना-पाकी और इस्तिहालह यानी जन्म-मरण की हालत से छूट कर अपने असली रूप में, जो एक-रस और एक

हालत में क़ायम रहता है, मिल जावे, और तकलीफ़ात से नजात पावे। और इस्तिहालह उसको कहते हैं कि कभी कोई और कभी कोई हालत या रूप बदलना, और यही मतलब जन्म-मरण से है कि ऐक देह या रूप से दूसरी देह या रूप में बदल जाना।

६—और, और मत, बर्फ़ या पानी रूप को इसी जगह के रूपों या निशानों में, या पोथियों और किताबों में, जिसमें असली हाल निज रूप और निज घर का, और उसकी प्राप्ति और वहाँ पहुँचने की युक्ति का ज़िक्र भी नहीं है, अटकाते हैं और इसी जगह सफ़ाई रखने या कुछ दिन आराम हासिल करने की तरकीब बयान करते हैं। पर उस तरकीब से, चाहे जिस क़दर कोई करे, सच्ची और पूरी सफ़ाई और दुखों से बचाव यानी पूरा आराम हासिल नहीं हो सकता है, और न वह तरकीब जैसी चाहिये किसी से बन पड़ती है। इसी से सब जीव बहुत करके लाचार और ख़ाली नज़र आते हैं, और न अपने निज घर और निज रूप का भेद जानते हैं और न उनको उसकी प्राप्ति की युक्ति की ख़बर है॥

१०—कुल मालिक राधास्वामी दयाल ने दया करके सब भेद और युक्ति साफ़ साफ़ करके समझाई और बानी में बयान करी है। अब जीवों को इख़्तियार है कि चाहे उन के बयान को बिचार करके मानें या न मानें॥

११—राधास्वामी मत में जब्र और ज़बरदस्ती रवा नहीं है, और न किसी को लालच या डर दिखाया जाता

है। अलबत्ता, बचन और बानी करके भेद सुनाया और समझाया जाता है। जो बड़भागी हैं, वे मानते हैं और अपने जीते-जी उस का फल देखते हैं यानी दुनिया में भी उसके दुख-सुख से बहुत कुछ बचे रहते हैं और अंत समय पर सुखाले जाते हैं ॥

१२—और जो नहीं मानते, उनको इस दुनिया और देह का भी दुख-सुख बहुत व्यापता है, और अंत समय पर इधर से अँधे और बेहोश होकर जाते हैं, और अन्तर में तरह तरह की तकलीफें रास्ते में सहते हैं ॥

१३—पर इस में भी मौज है। जिन का भाग जल्द उद्धार का है, वे बचनों को सुन कर जल्द समझते हैं और मानते हैं, और जिनके उद्धार में अभी देरी है, वे बचनों को उछाल देते हैं और नहीं मानते ॥

———

बचन तीसवाँ

सुरत को भी अहार और रस देना चाहिए जैसे कि तन, मन और इन्द्रियों को दिया जाता है

१—सब आदमी अच्छा खाना-पीना चाहते और खाते हैं, जिस से उन की देह की और उसके साथ मन और इन्द्रियों की ताक़त बढ़ती है। और जो खाना न मिले तो तमाम देह और उसके अंगों में ना-ताक़ती और ज़ौफ़ आ जाता है, और फिर जो काम कि उन से लिये जाते हैं, उनकी कार्रवाई दुरुस्त नहीं होती ॥

२—जो कुछ कि आदमी खाता और पीता है, उस का खुलासा खून के वसीले से तमाम बदन और अंग-अंग में पहुँच कर, और उस का अहार हो कर, उस को ताक़त देता है। और इसी तरह ताज़ा हवा खाने, और बाग़ और फुलवारी के देखने, और राग और बाजे के सुनने से दिल और इन्द्रियों को ताक़त और फ़रहत (खुशी) हासिल होती है ॥

३—सिवाय खाने और पीने और देखने और सुनने और सूँघने की चीज़ों के, हर एक आदमी सूक्ष्म तत्व और तीन गुणों औरों रोशनी और बिजली वग़ैरा से भी कुछ मदद, वास्ते परवरिश और ताक़त और सेहत (आराम) अपने बदन के, लेता है। पर इन सब चीज़ों से सुरत को अहार और ताक़त बहुत कम बल्कि कुछ नहीं मिलती। जिस क़दर मुमकिन है, वह अपने मंडल के चिदाकाश से मामूली मदद और ताक़त लेती है, जैसे कि आदमी की देह इस मंडल के आकाश से मदद और ताक़त लेती है ॥

४—सुरत यानी रूह को बढ़का अहार और गहरी खुशी और ताक़त और ताज़गी देने वाली मदद तब मिल सकती है जब कि कोई आदमी सुरत-शब्द अभ्यास के वसीले से उसको, ऊपर को चढ़ावे और जो धार अमृत की, ऊँचे देश से आती है, उसके साथ सुरत की धार का अभ्यास के वसीले से मेल किया जावे ॥

५—जब ऐसी ताक़त और खुशी अन्तर में सुरत को ऊँचे चढ़ कर हासिल होती है, तब वह अपने भागों को

सराहती है और गुरु की महिमा, जिनकी दया से वह सुरत-शब्द के अभ्यास में लग कर इस आनन्द और सरूर को पाती है, बारम्बार गाती है, और निहायत दर्जे की अहसान-मंदी उनकी ज़ाहिर करती है ॥

६—अभ्यास की इस हालत में सुरत को साफ़ मालूम होता है कि जो आनन्द उसको शब्द की धार से (जो कि अमृत और प्रकाश की धार है) मिल कर हासिल होता है, वैसा रस या आनन्द इस लोक में बिल्कुल नहीं है। और ज्यों-ज्यों अभ्यास बढ़ता जाता है, यानी जिस क़दर सुरत ऊँचे को चढ़ती जाती है, उसी क़दर वह आनंद दिन २ बढ़ता है, और अभ्यासी की हालत बदलती जाती है, यहाँ तक कि उसको इस दुनिया के भोग-विलास और राज-पाट और हुकूमत कुछ भी नहीं सुहाते हैं, और कुल मालिक सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल के चरणों में प्रीति और प्रतीत गहरी और ज़्यादा से ज़्यादा होती जाती है, और दुख-सुख, देह और दुनिया के, उसको, मालिक की दया से, और अंतर के आनन्द हासिल होने से, बहुत कम व्यापते हैं, और अगर ज़्यादा ऊँचे दर्जे तक पहुँच हो जावे, तो बिल्कुल नहीं व्यापते।

७—सिवाय ऊपर के लिखे हुए फ़ायदे के, सुरत-शब्द मार्ग के अभ्यासी को बीमारी और मौत के वक़्त तकलीफ़ कम होती है, क्योंकि जिस रास्ते से हो कर मरने के वक़्त सुरत जाती है, वह उस रास्ते को, जीते-जी किसी क़दर देख लेता है, और वहाँ की कैफ़ियत उसको सब

मालूम हो जाती है। फिर मरने के वक़्त, उस रास्ते पर बहुत सुख और आनन्द के साथ जाता है और अपने मालिक की क़ुदरत और दया को देख कर बहुत मगन होकर अपनी बड़भागता को सराहता है ॥

८—सब आदमियों को, चाहे मर्द होवे या औरत, मुनासिब मालूम होता है कि जैसे अपने तन, मन और इन्द्रियों को अहार और ताक़त देने के लिए रात-दिन मेहनत करते हैं, ऐसे ही थोड़ा-बहुत अपनी सुरत को भी ताक़त और अहार देने के वास्ते ज़रूर यत्न करें, नहीं तो सख़्त और भारी तकलीफ़ होगी, और मौत के वक़्त उनको बहुत दुख सहना पड़ेगा, और उस वक़्त का पछतावा कुछ फ़ायदा नहीं देवेगा ॥

९—जो बीस २ या बाइस २ घंटे दुनिया के कामों में ख़र्च करें तो लाज़िम है कि दो या तीन या चार घंटे अपनी सुरत के फ़ायदे के वास्ते भी, जो कि तन, मन और इन्द्रियों को चैतन्य करने वाली है, जरूर ख़र्च करें। जो वे यह काम सचौटी से करेंगे तो इसका फ़ायदा थोड़े दिन के अभ्यास से उनको आप दीखने लगेगा, और सच्चे मालिक की अपने अंतर में मौजूदगी और उसकी दया की ख़बर पड़ेगी, और तब उसकी सच्ची प्रतीत और प्रीति चरणों में आवेगी, और फिर आहिस्ता २ उसको अपने सच्चे उद्धार का सबूत अपने अंतर में मिल जावेगा ॥

१०—यह काम सबको करना ज़रूरी मालूम होता है। और जो कोई थोड़ा-सा भी अभ्यास सुरत-शब्द मार्ग

का, जीते-जी कर लेगा तो उस को चौरासी से बचा कर ऊँचे देश में पहुँचाया जावेगा, और जो दुनिया के भोग-विलास में अटक कर इस अभ्यास को नहीं मानेगा और नहीं करेगा तो वह अपने कर्मों के मुवाफ़िक़ ऊँची-नीची योनियों में जावेगा, और यमदूतों के हाथों से बहुत दुख पावेगा और जन्म-मरण की तक़लीफ़ हमेशा सहता रहेगा ॥

बचन इकतीसवाँ

सुरत-शब्द मार्ग के अभ्यास से मन और इन्द्रियों का क़ाबू में आना

१—सब महात्माओं और सब मतों के आचार्यों ने ऐसा कहा है कि जब तक मन और इन्द्रियाँ क़ाबू में नहीं आवेंगे, तब तक तत्व पद का ज्ञान यानी सिद्धान्त-पद की प्राप्ति नहीं होगी ॥

२—और मन और वासनाओं यानी संसारी चाहों के अभाव या नाश करने के लिए अनेक युक्तियाँ हर एक ने लिखी हैं। पर, उनमें से कोई भी युक्ति ऐसी नहीं है कि जिसका अभ्यास बे-खतरे और बे-खौफ़, गृहस्थी और विरक्त जीव, बराबर कर सकें और जीते-जी उसका फल भी अपनी आँखों से देखें ॥

३—प्राणायाम के अभ्यास को अकसर लोगों ने सब युक्तियों और अभ्यासों से बढ़कर रक्खा है, और कहा है

कि इससे मन और इन्द्रियाँ बस में आ सकते हैं। यह बात तो सही है, पर इस अभ्यास को कमाई यानी प्राणों का रोकना अब किसी से दुरुस्ती के साथ नहीं बन सकता है, और खतरे और बीमारी के सबब से किसी की जुरअत (हिम्मत) और ताक़त इस अभ्यास के करने को नहीं होती। और इस समय में खास करके प्राणायाम की युक्ति किसी गृहस्थी या भेष से नहीं बन सकती है॥

४—इस वास्ते ऐसी हालत जगत की देख कर, कुल मालिक सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल ने संत सतगुरु रूप धार करके सुरत-शब्द मार्ग की आसान युक्ति प्रगट की कि जिसका कुल जीव, गृहस्थ होवें या विरक्त, अथवा औरत होवें या मर्द, कुल मालिक राधास्वामी दयाल की शरण लेकर, अभ्यास करके, सत्तलोक यानी दयाल देश में पहुँच सकते हैं, और जन्म-मरण की क़ैद से बच कर और और देह और संसार के दुखों और सुखों से न्यारे होकर अमर देश में परम आनन्द को जिसका कभी अभाव या नाश नहीं हो सकता है, प्राप्त हो सकते हैं॥

५—वह युक्ति सुरत-शब्द की यह है कि अपनी सुरत यानी रूह की तवज्जह को अपने घट में, जहाँ शब्द की धुन हर दम हो रही है, उस आवाज़ का पता और भेद लेकर लगाना, और उसकी धुन को सुन कर छाँट करना, और जो शब्द कि संत सतगुरू ने हर एक स्थान, रास्ते के ताल्लुक़, समझाये हैं, उसी मुवाफ़िक़ धुन को

पकड़ के, सुरत और मन को ऊपर को चढ़ाना, और इसी तरह रास्ते के मक़ामों को तै करके, धुर मक़ाम पर, जो कुल मालिक राधास्वामी दयाल का स्थान है, पहुँच कर वहीं विश्राम करना ॥

६—जिस क़दर इस अभ्यास की कमाई राधास्वामी दयाल की दया से बनती जावेगी, उसी क़दर मन और सुरत सिमट कर आकाश की तरफ़ पिंड में, और फिर उसके परे ब्रह्मांड में, और फिर उसके भी परे दयाल देश यानी सत्तपुरुष राधास्वामी देश में चढ़ कर पहुँचते जावेंगे, और देह और इन्द्रियों और मन और संसार की सुध-बुध दिन दिन बिसरती जावेगी ॥

७—जिस किसी से एक दर्जे को भी कमाई किसी क़दर बन पड़ेगी, वह मुताविक़ अपनी सुरत की चढ़ाई के, तन, मन और इन्द्रियों को किसी क़दर बस में लावेगा, और उसी क़दर उसको अंतर में मालिक का दर्शन प्राप्त होता जावेगा, यानी पहले दर्जे में आत्मा और परमात्मा का, और दूसरे दर्जे यानी ब्रह्मांड में, ब्रह्म और पार-ब्रह्म का, जो कि त्रिलोकी का नाथ है, और तीसरे दर्जे में सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल का, जो कि कुल मालिक और सर्व-समर्थ हैं, दर्शन पावेगा ॥

८—"परम तत्व" नाम सत्त शब्द का है जो कि आदि में सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल के चरणों से प्रकट हुआ और कुल रचना जिसकी चैतन्यता से पैदा हुई। और "तत्व" नाम अनहद शब्द का है, जो ब्रह्म स्थान से

ज़ाहिर हुआ और जिसकी चैतन्यता से तीन लोक की रचना क़ायम है ॥

९—इसी तौर से सुरत-शब्द योग का अभ्यासी, तत्व और परम तत्व को प्राप्त होकर, अपने जीव का सच्चा कल्याण यानी पूरा कारज कर सकता है ॥

१०—यहाँ यह बात बयान करना ज़रूर है कि जब कि सुरत-शब्द मार्गी अपने अभ्यास के बल से सुरत-चैतन्य को जब चाहे, शब्द-चैतन्य की धार से मिला कर ऊपर को चढ़ा सकता है और उस वक़्त तन, मन और इन्द्रियाँ किसी क़दर या बिल्कुल उसके काबू में आ सकते हैं, तो उसको इख़्तियार हासिल हो जावेगा कि जब चाहे, जिस क़दर ताक़त मुनासिब जाने, उनको देकर काम लेवे या किसी वक़्त बिल्कुल उन से काम न लेवे ॥

११—पर इसके साथ यह भी ज़रूर होगा कि वह बाहर और अंतर गहरा सतसंग करके अपने मन और इन्द्रियों की, कोई दिन सतगुरु या साध का संग करके, अच्छी तरह गढ़त करावे कि उनमें कोई वासना इस लोक और परलोक के भोगों की बाक़ी न रहे, तब काम पूरा होगा। और यह बात आहिस्ता-आहिस्ता सतसँग और अभ्यास करके दुरुस्त बन आवेगी। जल्दी का काम नहीं है। क्योंकि जो मन और इन्द्रियों की गढ़त और सफ़ाई नहीं होगी तो वे आकाश के परे नहीं चढ़ सकेंगे और अभ्यास में हमेशा अनेक तरह की तरंगें उठा कर ख़लल डालते रहेंगे ॥

बचन बत्तीसवाँ

मन का प्रबल झुकाव संसार की तरफ़ और उसकी तरंगों के रोकने की जुगत

१—मन का स्वाभाविक झुकाव इन्द्रियों के द्वारे संसार और उसके भोग-बिलास की तरफ़ है और जिस क़दर माया के पदार्थ और सामान तरह-तरह के हैं, और हमेशा नये-नये क़िस्म के मौजूद होते जाते हैं, वे भी सब इन्द्रियों को और उनके साथ मन की धार को अपनी तरफ़ खैंचते हैं। इस सबब से मन और इन्द्रियाँ हमेशा चंचल रहती हैं॥

२—जब कि आदमी पैदा होता है, उस वक़्त से बराबर माया के पदार्थ और अपने प्यारे और रिश्तेदार लोग नज़र में आते हैं, और संसारी बातें सुनने और समझने का दिन-दिन अभ्यास बढ़ता जाता है, और इन्द्रियों के भोगों का रस मिलता जाता है और उन्हीं की चाह, जैसे कि उमर और समझ बढ़ती जाती है, आदमी के मन में पैदा होती जाती है। और उसके पूरा करने के वास्ते जतन सीखता है और करता है और संसार ही के ख़्यालात दिल में भरते जाते हैं और नये-नये भी पैदा होते जाते हैं॥

३—इस तौर से सब आदमी संसार के ही कारोबार में अटके रहते हैं और उसके सामान की प्राप्ति के लिये अनेक तरह के जतन और मेहनत करते हैं, और जब वह

सामान हासिल होता है, तब अपनी मेहनत की कामयाबी पर ख़ुश होकर अपने तईं बड़ा आदमी और भाग्यवान समझते हैं, और हिर्स और तृष्णा बढ़ा कर आइन्दा को ज़्यादा जतन और मेहनत करने को तैयार होते हैं ॥

४—ख़ुलासा यह कि दुनिया ही के कामों में अपना कुल वक़्त ख़र्च करते हैं और मन और इन्द्रियों के भोगों की चाह और उसके पूरा करने के फ़िक्र में उम्र भर खो देते हैं और कुटुम्ब और परिवार में आसक्त हो कर, उनको राज़ी और ख़ुश करने के वास्ते हमेशा मेहनत करते रहते हैं ॥

५—इस तरह, सब जीवों के ख़्याल स्वाभाविक संसारी हो जाते हैं और उनका मन हमेशा दुनिया के कारोबार के लिए, या धन और नामवरी प्राप्त करने के वास्ते तरंगें उठाया करता है और दूसरों की भलाई और बुराई, बिना पूरी तहक़ीक़ात के, किया करता है और अपनी कसरों पर नज़र नहीं डालता है ॥

६—इनमें से जो कोई जीव इत्तिफ़ाक़ से संतों के सतसंग में आ जाता है और मत का निर्णय सुन कर और भेद समझ कर अभ्यास करने पर तैयार होता है, तो उसको, पिछले स्वभाव और संसारी करनी के सबब से, अपने मन और चित्त को नाम और रूप और शब्द की धुन के साथ जोड़ने में शुरू में किसी क़दर दिक़्क़त पड़ती है, और बारम्बार दुनिया और उसके भोगों के ख़्याल गुनावन रूप होकर अभ्यास के वक़्त उस को सताते हैं और भजन और

ध्यान का रस, जैसा चाहिए, नहीं लेने देते ॥

७—इसके सिवाय जिन लोगों ने कि थोड़ी-बहुत विद्या पढ़ी है और अनेक तरह के ख़्यालात, पिछले वक़्त के विद्यावालों के, उनके मन और बुद्धि में भरे हुए हैं, उनको तरह-तरह के गुनावन, विद्या और बुद्धि के, वक़्त सतसंग और अभ्यास के, उठते रहते हैं और संतों के बचन का पूरा-पूरा निश्चय नहीं आने देते हैं ॥

८—इन सब विघ्नों के दूर करने के वास्ते राधास्वामी दयाल ने दया करके यह युक्ति बताई है कि जहाँ तक मुमकिन होवे, कुछ अपना वक़्त भजन, ध्यान और सुमिरन, और सतसंग और संतों की बानी के पाठ में ख़र्च करें, और जहाँ तक बन सके, अपने मन को दुनिया के फ़िज़ूल ख़्यालों से बचा कर घट में रोकें। तब आहिस्ता-आहिस्ता मन निश्चल और चित्त निर्मल होवेगा, और अपने अंतर में कुछ-कुछ रस और आनन्द पावेगा। और यही अभ्यास जारी रखने से हालत दिन-दिन बदलती जावेगी और अन्तर में रस और आनन्द बढ़ता जावेगा और तब संसार के भोगों की चाह आहिस्ता-आहिस्ता घटती जावेगी ॥

९—मालूम होवे कि मन से एक वक़्त में एक ही काम हो सकता है, यानी एक ही धार, ताक़त वाली, मन से एक वक़्त में उठ कर कार्रवाई कर सकती है, चाहे वह काम परमार्थी करे और चाहे दुनिया का ॥

१०—दुनिया के काम की धार का मुख इन्द्रियों की तरफ़ यानी नीचे को है, और परमार्थी काम की धार

का मुख, जो संतमत के मुवाफ़िक़ उठती है, ऊँचे की तरफ़ होता है ॥

११—संसारी परमार्थ की धार (जैसे कि और मतों में परमार्थी काम किये जाते हैं), इन्द्रियों के वसीले से, या तो बाहर की तरफ़ जारी होती है या अंतर में, नीचे की तरफ़, हृदय या नाफ़ के स्थान की तरफ़ जारी होता है ॥

१२—संत मत के मुवाफ़िक़ यह धार, जो बाहरमुख है, दुनिया के साथ मेल रखती है और जो पिंड के अन्दर, हृदय या नाफ़ की तरफ़ जारी होती है, वह भी, जो उसका सिलसिला ऊँचे के स्थान से मस्तक में नहीं लगा हुआ है, तो संत-मत के मुवाफ़िक़ बाहरमुख समझी जाती, और उस में सिवाय थोड़ी-बहुत मन और इन्द्रियों की सफ़ाई के कोई फ़ायदा, सुरत और मन की चढ़ाई का, हासिल नहीं होता है ॥

१३—संत कहते हैं कि जब तक सुरत और मन, अपना स्थान, जो पिंड में है, आहिस्ता-आहिस्ता छोड़ कर, ऊँचे देश यानी ब्रह्मांड में न चढ़ेंगे, तब तक पक्की और सच्ची सफ़ाई और अंतर का सच्चा रस और आनन्द प्राप्त नहीं होगा, और संसारी वासना और तृष्णा का मल, जो मन और सुरत पर चढ़ा हुआ है, कभी नहीं उतरेगा। इस वास्ते सब जीवों को मुनासिब है कि संत-मत के अनुसार, भेद समझ कर और सुरत-शब्द योग की युक्ति लेकर, अपने मन और सुरत को आहिस्ता-आहिस्ता ब्रह्मांड की तरफ़ चढ़ाने का अभ्यास शुरू करें,

तो मन का झुकाव संसार की तरफ दिन-दिन कम होता जावेगा, और अन्तर में शब्द का रस पाकर ब्रह्मांड की तरफ़ चढ़ता जावेगा, और तब सच्चा बैराग संसार से, और सच्चा अनुराग सच्चे मालिक के चरणों में, उसको हासिल होता जावेगा ॥

१४—इस वास्ते कहा जाता है कि जो कोई सचौटी के साथ अपने मन और इन्द्रियों को संसार के भोगों की तरफ़ से हटाना चाहता है और सच्चे मालिक के चरणों में प्रेम के साथ अपने सुरत और मन को जोड़ना चाहता है, उसको चाहिए कि हमेशा अपने मन और उसकी तरंगों की चौकीदारी करे, यानी नज़र करता रहे कि वह क्या-क्या तरंग उठाता है। जो संसारी तरंगें फ़िज़ूल हैं, उनको रोके और जो परमार्थी तरंगें उठें, उनको बढ़ावे और ताक़त देवे ॥

१५—संसारी तरंगों का रोकना इस तरह पर हो सकता है कि जब इस क़िस्म की हिलोर मन में उठती हुई मालूम पड़े, उस वक़्त मन और सुरत की तवज्जह को ऊपर की तरफ़, जैसा कि भेद स्थानों का संत मत के मुवाफ़िक़ समझाया गया है, पहले स्थान पर नाम के आसरे, चाहे स्वरूप के आसरे, और चाहे शब्द के आसरे, लगावे, और उसी जगह पर जमा देवे। फ़ौरन उस धार का मुख जो इन्द्रियों की तरफ़ जाने वाली थी, ऊपर की तरफ़ मुड़ जावेगा और वह संसारी तरंग हट जावेगी या मिट जावेगी और अंतर में थोड़ा-बहुत ऊँचे देश का रस मिलेगा ॥

१६—नाम के सुमिरन का रस और स्वरूप के ध्यान का रस, जो ऊँचे स्थान पर आँखों के ऊपर लिया जावे, और शब्द का रस, जो पहले स्थान सहसदलकँवल या दूसरे स्थान त्रिकुटी की धुन सुन कर प्राप्त होवे, इस क़दर ताक़त रखता है कि मन की धार को अपनी तरफ़ थोड़ा-बहुत खींच कर दूसरी तरफ़ से हटा लेगा और जो ज़्यादा रस मिलेगा तो वह धार उसी तरफ़ को रवाँ होकर उस स्थान पर ठहर जावेगी और थोड़ी देर ख़ूब रस देवेगी और जो तवज्जह किसी क़दर कम रही तो रस कम आवेगा। फिर भी, दूसरी तरफ़ यानी इन्द्रियों और नीचे की तरफ़ उस धार की चाल बन्द हो जावेगी या कम हो जावेगी और उस तरफ़ कुछ कार्रवाई नहीं कर सकेगी ॥

१७—जब कभी ऐसा इत्तिफ़ाक़ होवे कि अभ्यासी का ज़ोर, वास्ते मोड़ने धार के मुख के, काम न देवे, यानी ऊँचे की तरफ़ को नाम या स्वरूप या शब्द के आसरे न चढ़े, और बाहर की तरफ़ को रवाँ होवे, तो भी इस खैंचा-तानी में उस धार की ताक़त नीचे की तरफ़ कुछ न कुछ कम हो जावेगी, और जो बिल्कुल मोड़ी न गई तो भी उसकी कार्रवाई नीचे की तरफ़ यानी इन्द्रियों द्वारे किसी क़दर ज़ईफ़ और कमज़ोर या कम हो जावेगी ॥

१८—और जो किसी वक़्त अभ्यासी का बस न चले और धार ज़ोर के साथ इन्द्रियों की तरफ़ रुजू करे और ऊपर की तरफ़ तवज्जह, नाम या रूप या शब्द में, न आवे

तो अभ्यासी को चाहिए कि उस धार की कार्रवाई के पीछे अपने मन में पछतावे और शर्मावे और चरणों में राधास्वामी दयाल के प्रार्थना करके मुआफ़ी माँगे, और आइन्दा को होशियारी करे। ऐसा करने से, उस धार की कार्रवाई का असर कम हो जावेगा यानी उस कार्रवाई का फल बहुत हल्का हो जावेगा। और जो आइन्दा को होशियारी जारी रही, तो मुआफ़ी भी हो जावेगी ॥

१६—इसी तरह से परमार्थी का काम आहिस्ता-आहिस्ता बनता जावेगा, यानी भूल-चूक उसकी बराबर मुआफ़ होती जावेगी, इस शर्त पर कि वह अपनी मेहनत और कोशिश, वास्ते फेरने धार के मुख के, सच्चे मन से, जारी रक्खे और अपने क़ुसूरों पर शर्माता और पछताता रहे और प्रार्थना करता रहे। तब दिन-दिन सफ़ाई हासिल होती जावेगी, यानी मन और चित्त निर्मल और निश्चल होते जावेंगे, और एक दिन माया के घेरे से निकल कर उसकी सुरत, संत सतगुरु राधास्वामी दयाल की मेहर से, दयाल देश यानी अपने निज घर में पहुँच जावेगी ॥

शब्द

सुरतिया मान तजत।
आज सतसंग में रस पाय ॥ १ ॥

मन का संग कर हुई दिवानी।
भोगन में लिपटाय ॥ २ ॥

जगत वासना नित्त बढ़ावत।
दुक्ख सहत फिर फिर पछताय ॥ ३ ॥

कर्म धर्म संग हुई बावरी ।
देवी देव पुजाय ॥ ४ ॥

तीरथ बरत जगत व्यौहारा ।
नित्त करे, सिर कर्म चढ़ाय ॥ ५ ॥

संतन की बानी नहिं पढ़ती ।
मोह जाल में रही फँसाय ॥ ६ ॥

भाग जगा गुरु सन्मुख आई ।
निज घर का उन भेद सुनाय ॥ ७ ॥

जग का झूठा खेल पसारा ।
बहु विधि गुरु ने दिया समझाय ॥८ ॥

समझ बूझ सतसंग में लागी ।
मान बड़ाई तज दई आय ॥ ९ ॥

गुरु से प्रीति करत अब साँची ।
सुरत-शब्द की कार कमाय ॥१० ॥

घट में निरख विलास नवीना ।
गुरु चरणन प्रतीत बढ़ाय ॥११ ॥

चरण शरण राधास्वामी हिये धर ।
लीना अपना काज बनाय ॥१२ ॥

बचन तैंतीसवाँ

सच्चे और पूरे गुरु की पहचान जल्द नहीं हो सकती। इस वास्ते, पहले उनके साथ साध-भाव का बर्ताव करे और सतसँग और अभ्यास करे जावे। तब कोई दिन में कुछ-कुछ परख आती जावेगी।

१—संत-मत और संतों की बानी में, सतगुरु की महिमा बहुत से बहुत सुनाई और कही गई है। और संत सतगुरु नाम उन्हीं सतपुरुषों का है कि जो सत्तलोक और राधास्वामी पद में पहुँचे और सतपुरुष और राधास्वामी के स्वरूप से जिनकी एकता हुई। उनकी महिमा, जिस क़दर करी जावे, वे कम से कम है॥

२—ऐसे सतगुरु दुर्लभ हैं और जो किसी को मिल भी जावें तो उनकी पहिचान नहीं आती। क्योंकि संसारी और दुनियादार जीवों की ताक़त नहीं है कि सच्चे और पूरे महात्माओं की पहिचान कर सकें।

३—इस दुनिया में इस क़दर गुरुओं की भीड़-भाड़ और कसरत है और वे सब धन और मान के चाहने वाले हैं कि उनमें से सच्चे और पूरे गुरु की छाँट और पहिचान करना बहुत मुश्किल है।

४—जो कोई पोथियाँ पढ़ कर, और उनमें से महात्माओं के लक्षण समझ कर, अपनी विद्या और बुद्धि से सच्चों

का जाँच करना चाहे, तो हरगिज़ नहीं कर सकता। पाखंडी और झूठे गुरु, बाहरी रूप थोड़ी देर के वास्ते बना कर, चाहे धोखा देवें, पर जो पूरे और सच्चे हैं, वे कोई रूप या स्वाँग नहीं बनाते, और और जीवों के मुवाफ़िक़ उनकी रहनी साधारण होती है॥

५—जो कोई करामात या शक्ति उनकी देखना चाहे तो हरगिज़ बचन करके या और तरह से नहीं दिखाते और न अपनी कोई ताक़त दिखाते, और न वे चाह धन और मान की जीवों से रखते हैं। फिर उनकी पहिचान कठिन है॥

६—झूठे परमार्थी यानी स्वार्थी जीव, कुछ शक्ति और कला और करामात देख कर, यक़ीन और विश्वास लाना चाहते हैं। पर ऐसे जीवों को करामात या कला दिखाने का हुक्म नहीं है, क्योंकि जो उनको कोई शक्ति दिखाई भी जावे, तो वे संसारी और दुनिया के मतलब यानी औलाद और धन और तन्दुरुस्ती के माँगने के सिवाय और कुछ नहीं चाहेंगे, यानी वे परमार्थ की कोई चाह नहीं रखते और जो किसी के कहने-सुनने से परमार्थ की चाह भी ज़ाहिर करेंगे, तो ऐसी माँग माँगेंगे कि एक ही दिन में या बहुत जल्दी उनको अन्तर में कुछ कला या शक्ति या मालिक का दर्शन या रोशनी नज़र आवे। तब यक़ीन और प्रतीत लावेंगे, नहीं तो सच्चे परमार्थ को झूठा और सच्चे सतसंग को धोखे की जगह और सच्चे परमार्थियों को, जो प्रीति और प्रतीत करते हैं, नादान और मूर्ख और ख़ुशामदी और स्वार्थी समझ कर, उनका निरादर करेंगे और अपने मन में उनको

ओछे और तुच्छ समझवाले जान कर उनके संग से नफ़रत करेंगे ॥

७—फिर इन जीवों को सच्चे सतसंग में लगाने की मौज नहीं है, क्योंकि वे सतसंग में विघ्न डालते हैं और उनके संग से सच्चे परमार्थियों का किसी क़दर अकाज होता है ॥

८—जो सच्चे परमार्थी जीव हैं, उनको संत सतगुरु या साधगुरु ज़रूर मदद देते हैं। और जो वे उनका बचन मान कर सतसंग और अंतर अभ्यास बराबर करे जावेंगे, तो ऐसे जीवों को थोड़ी-बहुत पहिचान भी पूरे गुरु की आहिस्ता-आहिस्ता आती जावेगी, पर जब तक कि अन्तर में सफ़ाई अच्छी तरह न होवेगी और सच्चे मालिक का सच्चा प्रेम थोड़ा-बहुत मन में नहीं आवेगा, तब तक यह पहिचान पक्की नहीं होवेगी और न हर वक़्त क़ायम रहेगी ॥

९—अंतर की सफ़ाई से मतलब यह है कि मन में चाह संसार के भोग-विलास की और उसकी तृष्णा बाक़ी न रहे ॥

१०—ज़रूरी और वाजिबी चाह वास्ते अपने और अपने कुटुम्ब के पालन और पोषण के, औसत यानी मध्य के दर्जे पर, सच्चे परमार्थ की प्राप्ति में इस क़दर विघ्न नहीं डालती है। पर अनेक तरह की चाहों का मन में भरा रहना, और नित्त उनका बढ़ाना और उन्हीं के पूरा करने